स्वस्थ जीवनके सूत्र

[देवदुर्लभ मानव-शरीरको स्वस्थ रखे बिना प्राणी अपने लक्ष्यतक पहुँच नहीं पाता। कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना और चतुर्विध पुरुषार्थके समुचित साधन स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव हो सकते हैं। आजकल शारीरिक तथा मानसिक भोग-विलासके प्रसाधनोंकी इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्यसे दिनों-दिन विमुख एवं वञ्चित होता जा रहा है। जीवनकी अतिव्यस्तता, विलासिता या इन्द्रिय-लोलुपताके कारण मानसिक तनाव तथा शारीरिक कष्ट (गलत रहन-सहनका कुप्रभाव) बढ़ता जा रहा है। मानवके सहज स्वाभाविक गुण—प्रेम, सहानुभूति, सेवा तथा सद्व्यवहार आदि तीव्र गतिसे समाप्त होते जा रहे हैं और इनके स्थानपर घृणा, भय, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि तेजीसे बढ़ते चले जा रहे हैं। इन परिस्थितियोंमें पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति होती है, जो सब प्रकारके रोगोंके कारण हैं। गम्भीरतासे विचार करनेपर यह ज्ञात होगा कि अन्तर्मनमें व्याप्त भय, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, राग-द्वेषके भीतर ही समस्त रोगोंका बीज या अंकुर विद्यमान है।

आजकल लोग स्वस्थ तो रहना चाहते हैं, पर इसके लिये डॉक्टरी दवाओंका प्रयोग अधिक करनेके परिणामस्वरूप उपस्थित रोगके दब जानेपर भी अन्य कई रोगोंके बीजका सूत्रपात शरीरमें हो जानेसे निरन्तर कष्टमें पड़े रहते हैं। सामान्यत: व्यक्ति छोटी-मोटी बीमारियोंसे परेशान रहते हैं और उनके लिये उन्हें बार-बार चिकित्सकोंकी शरण लेनी पड़ती है। वास्तवमें खान-पान, आहार-विहार एवं रहन-सहनकी अनियमितता तथा असंयमके कारण ही रोग और व्याधियोंका प्रादुर्भाव होता है। संयमित और नियमित जीवनसे प्राणी रोगमुक्त हो जाता है। प्रकृतिके कुछ सरल और स्वाभाविक नियम हैं, जिनके अनुपालनका ध्यान रखनेपर व्यक्ति प्राय: अस्वस्थ नहीं होते। यदि किसी कारणवश कोई बीमारी हो जाती है तो बिना औषध-सेवन किये वे प्राकृतिक नियमोंके पालनसे स्वस्थ हो सकते हैं।

*प्राचीन कालसे भारतीय परम्परामें संयमित आहार-विहारसे युक्त नियमपूर्वक जीवनयापन ही स्वस्थ जीवनका सर्वोत्तम उपाय माना जाता है। इस दृष्टिसे सर्वसाधारणके लिये उपयोगी स्वस्थ जीवनके कुछ मूलभूत सिद्धान्त एवं सूत्र यहाँ प्रस्तुत हैं।—**सं०**]*

स्वस्थताका रहस्य

रोगोंके उपचारकी अपेक्षा रोगोंसे बचना अधिक श्रेयस्कर है। यदि हम प्रयत्न करें और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियमोंकी जानकारी प्राप्त करके उनका नियमपूर्वक पालन करें तो अनेकों रोगोंसे बचकर प्राय: जीवनपर्यन्त स्वस्थ रह सकते हैं।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ कौन है? वास्तवमें मनुष्यके स्वस्थ रहनेका अर्थ यह है कि उसके शरीरके सभी अङ्ग पूर्ण और अपने-अपने कार्यका निर्वाह करनेमें समर्थ हों, शरीर न अधिक स्थूल हो न अधिक दुर्बल तथा मन एवं मस्तिष्कपर पूर्ण अधिकार हो। स्वस्थ रहनेके लिये शरीर एवं मन दोनोंका स्वस्थ होना अनिवार्य है। यदि आपका शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट है, किंतु मन दुर्बल, अस्वस्थ एवं रोगी है तो ऐसी शारीरिक स्वस्थता किसी भी कार्यके लिये उपयोगी नहीं है। मनकी प्रेरणासे ही शरीरको कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है। अस्वस्थ मनद्वारा किया गया कार्य कभी भी सुचारुरूपसे पूर्ण नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि मन स्वस्थ है और शरीर दुर्बल तो मनद्वारा प्रेरित कार्यको शरीरकी दुर्बलता निष्क्रिय बना देगी। अत: पूर्ण स्वास्थ्यके लिये मन और तन—इन दोनोंका स्वस्थ होना अत्यावश्यक है।

स्वास्थ्यकी रक्षा—मानव-शरीर ईश्वरद्वारा निर्मित एक ऐसा जटिल तथा स्वचालित यन्त्र है, जिसमें एक ही समयमें विभिन्न अङ्ग, विभिन्न कार्योंका सम्पादन करते हैं। यदि हम इस यन्त्रके रख-रखावपर ध्यान नहीं देंगे तो क्या होगा? इसकी कार्यक्षमता व्यतीत होते हर क्षणके साथ कम होती जायगी, हमारा स्वास्थ्य हमसे छिन जायगा और शरीर रोगालय बनकर रह जायगा। अत: आवश्यक है कि हम इसे सही ढंगसे कार्य करनेकी स्थितिमें रखनेके लिये प्रयत्न करें। नीरोग एवं स्वस्थ रहनेके लिये निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-सामर्थ्यानुसार व्यायाम करें।

२-भरपूर निद्रा लें तथा आराम करें।

३-सामयिक वस्त्रोंको धारण करें।

४-उठने-बैठनेकी उचित मुद्रा अपनायें।

५-शरीरको साफ और स्वच्छ रखें।

६-यथोचित मात्रामें पौष्टिक भोजन ग्रहण करें।

७-असत् स्वभावके अभ्याससे वञ्चित रहें।

८-तनावमुक्त रहें।

९-शरीरकी मालिश नियमित करें।

१०-सप्ताहमें एक बार उपवास अवश्य करें।

स्वास्थ्य एवं व्यायाम

शारीरिक व्यायाम हमारे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन और पानी। यदि हम स्वस्थ, बलवान्, चुस्त और फुर्तीला बनना चाहते हैं तो व्यायाम अत्यावश्यक है। किंतु आजके—आधुनिक जीवनमें हम इतने आरामपसंद तथा आलस्ययुक्त हो गये हैं कि कुछ दूर पैदल चलना भी अपनी मान-मर्यादाके प्रतिकूल समझते हैं और विशेषतया वाहनोंका ही सहारा लेते हैं। इसी आरामपरस्तीके कारण हम सामान्य रोगोंके साथ-साथ हृदय-रोगोंको आमन्त्रित करते हैं। यदि हम नियमित व्यायाम करें तो न केवल रोगोंको अपने पास आनेसे रोक सकते हैं, वरन् अनेकों सामान्य रोगों—जैसे अपच, क़ब्ज़, अनिद्रा आदिको बिना औषधि-सेवनके ही दूर भगा सकते हैं। व्यायामका सर्वाधिक प्रभाव हमारी श्वास-क्रियापर पड़ता है। एक स्वस्थ व्यक्ति एक मिनटमें १५ से १८ बार श्वास लेता और छोड़ता है। श्वास लेते समय शुद्ध वायु ऑक्सीजनके रूपमें शरीरमें प्रविष्ट होता है और पूरे शरीरका भ्रमण करके कार्बन डाइऑक्साइडके रूपमें बाहर निकलता है। व्यायाम करते समय हमारी श्वास-प्रक्रिया तीव्र हो जाती है, इससे रक्तका संचार भी तेज हो जाता है तथा शरीरकी भीतरी सफाई ठीकसे होती रहती है। व्यायामद्वारा शरीरकी त्वचाके रोम-कूप खुल जाते हैं और भरपूर पसीना आने लगता है, जिससे शरीरकी अस्वच्छता बाहर निकल जाती है।

इसके अतिरिक्त व्यायामसे अन्य लाभ भी हैं, जैसे—

१-व्यायाम करनेसे अनेक रोगोंसे रक्षा होती है।

२-हृदय-संवहनी नलिकाओंको बल प्राप्त होता है।

३-दिलका दौरा (Heart Attack) पड़नेकी सम्भावना कम हो जाती है।

४-शरीरको विश्राम मिलता है, जिसके फलस्वरूप अनिद्रा, बेचैनी तथा तनाव-जैसे रोग भी दूर हो जाते हैं।

५-मानसिक एकाग्रता और सतर्कता बढ़ती है।

६-शारीरिक चुस्ती-फुर्ती और शक्ति बढ़ती है।

७-प्रसव-पीडा कम होती है।

८-अस्थमा, मधुमेह, गठिया, कमर-दर्द आदि रोग दूर हो जाते हैं।

९-मोटापा दूर होता है।

१०-पेटके रोगोंसे रक्षा होती है।

व्यायाम करनेसे पूर्व—व्यायाम प्रारम्भ करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि आपका शारीरिक गठन कैसा है तथा आपका कार्यक्षेत्र क्या है? जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं, उन्हें अधिक कठोर व्यायामकी आवश्यकता नहीं होती, किंतु जो इसके विपरीत मानसिक कार्य अधिक करते हैं, उन्हें कठोर व्यायामकी आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार दुबले-पतले व्यक्तियोंको ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिससे उनके शरीरके सभी अङ्ग सक्रिय हो सकें। ऐसे व्यक्तियोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि उनकी कमजोरीका मुख्य कारण दुबलापन नहीं, बल्कि मांसपेशियोंकी दुर्बलता है। अतः उन्हें ऐसा व्यायाम करना चाहिये जिससे मांसपेशियाँ मजबूत एवं सुदृढ़ हों। इसके विपरीत जिनका शरीर काफी सुडौल एवं मांसपेशियाँ मजबूत हैं, उनके लिये तनिक कठोर व्यायाम श्रेयस्कर होते हैं। जो किसी कारण मोटे हो गये हैं, उन्हें कठोर व्यायाम न करके ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिसका प्रभाव शरीरकी अनावश्यक चर्बीपर पड़े तथा जो इसे कम करके मांसपेशियोंको सुदृढ़ एवं मजबूत बनाये। ऐसे व्यक्तियोंके लिये उचित होगा कि वे किसी विशेषज्ञसे परामर्श प्राप्त करनेके पश्चात् ही अपने लिये व्यायामका चुनाव करें।

व्यायाम करते समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखें—

(१) ढीले वस्त्र ही धारण करें। कसे हुए वस्त्र पहनकर व्यायाम नहीं करना चाहिये।

(२) कोई भी व्यायाम करनेके पश्चात् दस-बारह बार लम्बे एवं गहरे साँस लेने चाहिये।

(३) यदि किसीको कोई संक्रामक अथवा गम्भीर रोग हो तो उसे व्यायाम करनेसे पहले चिकित्सकसे परामर्श कर लेना चाहिये अन्यथा व्यायाम हानिकर सिद्ध हो सकता है।

(४) व्यायाम ऐसे स्थानपर करना चाहिये, जहाँ स्वच्छ वायुका आवागमन हो, वातावरण स्वच्छ हो। गंदे एवं अस्वच्छ वातावरणमें व्यायाम करनेसे कोई लाभ नहीं होता है।

व्यायाम करनेके लिये सबसे उपयुक्त एवं उत्तम समय प्रात:कालका होता है, किंतु उपर्युक्त सभी नियमोंका पालन करते हुए रात्रिको सोनेसे पूर्व भी हलका व्यायाम किया जा सकता है।

व्यायामकी विधि

व्यायाम कैसे किया जाय, इस विषयमें कोई एक ही मत प्रचलित नहीं है। कुछ विशेषज्ञोंका विचार है कि व्यायामकी गति तीव्र होनी चाहिये और कुछ विशेषज्ञोंका कहना है कि गति धीमी होनी चाहिये। परंतु सर्वश्रेष्ठ व्यायाम वही है जिसमें चुस्ती-फुर्ती तथा तेजी तो हो पर यह भी नहीं कि व्यायाम करनेवाला थकानका अनुभव करे। वस्तुत: व्यायामकी गति ऐसी होनी चाहिये जिससे मांसपेशियोंमें सिकुड़न एवं फैलाव उत्पन्न हो। इसके लिये उचित यही है कि मांसपेशियोंमें कुछ क्षणोंके लिये तनाव उत्पन्न करनेके बाद उन्हें ढीला छोड़ दिया जाय जिससे रक्त-संचरण तीव्र गतिसे हो सके।

व्यायाम करनेसे शरीरमेंसे स्वाभाविक रूपसे पसीना निकलता है तथा थकान होती है। अत: थकान दूर करनेके लिये कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है। विश्राम पसीना सूखनेतक करना चाहिये, तत्पश्चात् शीतल जलसे स्नान करना चाहिये। इससे रही-सही थकान भी दूर हो जाती है एवं शरीरकी शुद्धि भी होती है।

सबसे उत्तम व्यायाम है भ्रमण—इसके लिये प्रात:कालका समय सर्वोत्तम है, इस समय वातावरण अत्यन्त ही आनन्ददायक होता है तथा वायु भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यवर्धक रहता है।

प्रात:की सैर यदि हरी-हरी घासपर नंगे पाँव की जाय तो सर्वोत्तम है। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, भूख अधिक लगती है तथा थकान भी अनुभव नहीं होती। नंगे पाँव सैर करनेसे पूर्व यह ध्यान रहे कि उस स्थानपर काँटे और गंदगी आदि न हो।

आहार एवं स्वास्थ्य

हम दिनभरमें जो कुछ भी सेवन करते अर्थात् खाते-पीते हैं, वह आहार कहलाता है। आहार एवं स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रतिदिनके आहारद्वारा शरीरको विकास तथा क्रियाओंके सम्पादन-हेतु आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है। किंतु हममेंसे अधिकांश व्यक्ति यह नहीं जानते कि हमें कैसा आहार लेना चाहिये। वास्तवमें हमें ज्ञान ही नहीं है कि हमारे शरीरको किन आवश्यक तत्त्वोंकी आवश्यकता है तथा वे तत्त्व हमें किन स्रोतोंसे प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरणके लिये अधिक शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको अधिक पौष्टिक भोजनकी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत हलका शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको हलका तथा सुपाच्य भोजन करना चाहिये। वस्तुत: आहार ऐसा होना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ, पुष्ट तथा नीरोगी रहे।

आहार कैसा हो ?

विभिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पोषक तत्त्व समाहित होते हैं, जो शरीरके विभिन्न अङ्गोंको कार्यशील बनाये रखनेके लिये आवश्यक होते हैं। उदाहरणके लिये दूधमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रामें होता है, जो शरीरके रोगोंसे रक्षा करने और अच्छी दृष्टिके लिये आवश्यक है। इसकी कमीसे शरीर रोगी तथा दृष्टि कमजोर हो सकती है। अत: हमारे भोजनमें इन पोषक तत्त्वों—जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन तथा खनिज-तत्त्वों आदिकी संतुलित मात्रा होनी चाहिये।

आहार-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम

१-सदैव अपने कार्यके अनुसार आहार लेना चाहिये। यदि आपको कठोर शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है तो

अधिक पौष्टिक आहार लेवें। यदि आप हलका शारीरिक परिश्रम करते हैं तो हलका सुपाच्य आहार लेवें।

२-प्रतिदिन निश्चित समयपर ही भोजन करना चाहिये।

३-भोजनको मुँहमें डालते ही निगलें नहीं, बल्कि खूब चबाकर खायें, इससे भोजन शीघ्र पचता है।

४-भोजन करनेमें शीघ्रता न करें और न ही बातोंमें व्यस्त रहें।

५-अधिक मिर्च-मसालोंसे युक्त तथा चटपटे और तले हुए खाद्य पदार्थ न खायें। इससे पाचन-तन्त्रके रोग—विकार उत्पन्न होते हैं।

६-आहार ग्रहण करनेके पश्चात् कुछ देर आराम अवश्य करें।

७-भोजनके मध्य अथवा तुरंत बाद पानी न पीयें। उचित तो यही है कि भोजन करनेके कुछ देर बाद पानी पिया जाय, किंतु यदि आवश्यक हो तो खानेके बाद बहुत कम मात्रामें पानी पी लेवें और इसके बाद कुछ देर ठहरकर ही पानी पीयें।

८-ध्यान रखें, कोई भी खाद्य पदार्थ बहुत गरम या बहुत ठंडा न खायें और न ही गरम खानेके साथ या बादमें ठंडा पानी पीयें।

९-आहार लेते समय अपना मन-मस्तिष्क चिन्तामुक्त रखें।

१०-भोजनके बाद पाचक चूर्ण या ऐसा ही कोई भी अन्य औषध-पदार्थ सेवन करनेकी आदत कभी न डालें। इससे पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है।

११-रात्रिको सोते समय यदि सम्भव हो तो गरम दूधका सेवन करें।

१२-भोजनोपरान्त यदि फलोंका सेवन किया जाय तो यह न केवल शक्तिवर्द्धक होता है, बल्कि इससे भोजन शीघ्र पच भी जाता है।

१३-जितनी भूख हो, उतना ही भोजन करें। स्वादिष्ट पकवान अधिक मात्रामें खानेका लालच अन्तत: अहितकर होता है।

१४-रात्रिके समय दही या लस्सीका सेवन न करें।

स्वच्छता एवं स्वास्थ्य

हम अपने स्वास्थ्यके विषयमें चाहे दिन-रात सोचते रहें तथा आहार-सम्बन्धी नियमोंका पालन करते रहें अथवा अपने स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिये कितने ही पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करते रहें, किंतु स्वच्छता एवं सफाईके बिना यह सब व्यर्थ है; क्योंकि स्वच्छतासे ही स्वास्थ्यकी रक्षा की जा सकती है।

स्वच्छतासे हमारा तात्पर्य केवल शारीरिक स्वच्छतासे नहीं वरन् अपने घर और आस-पासके वातावरणसे भी है। इस विषयमें आपको निम्न बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

१-प्रतिदिन ताजे पानीसे स्नान करें, तत्पश्चात् त्वचाको तौलियेसे भली-भाँति रगड़कर सुखायें।

२-दिनमें कम-से-कम दो बार मुँह एवं दाँतोंकी सफाई अवश्य करें।

३-सदैव साफ-सुथरे वस्त्र धारण करें।

४-पीनेका पानी एवं अन्य खाद्य पदार्थ भी स्वच्छ होने चाहिये, क्योंकि अस्वच्छतासे रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

५-आपका घर तथा दफ्तर साफ-सुथरा, हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिये।

६-सामान्य वस्त्रोंकी भाँति सदैव स्वच्छ अन्तर्वस्त्र ही धारण करें तथा नियमपूर्वक बदलें।

७-वस्त्रोंकी भाँति विस्तर भी साफ होना चाहिये। विस्तरकी चादरको प्रतिदिन बदलें और अन्य वस्त्रोंको धूपमें सुखा लेवें।

८-अपने पहननेके वस्त्र, तौलिया, कंघा आदि वस्तुओंके विषयमें भी पूरा-पूरा ध्यान रखें। ये चीजें न तो किसीको प्रयोगमें लाने दें और न ही किसी दूसरे व्यक्तिकी ऐसी चीजें प्रयोगमें लायें। इससे रोगके जीवाणु फैलते हैं।

९-ऐसे खाद्य पदार्थोंका सेवन कदापि न करें जो गंदे या बासी हों अथवा जिनपर मक्खियाँ आदि बैठ चुकी हों।

१०-किसीकी जूठी चीज या जूठे बरतनका प्रयोग न करें और न ही किसी अन्य व्यक्तिको अपने जूठे पदार्थ अथवा बरतनका प्रयोग करने दें। अपने परिवारके सदस्योंके बीच भी इस नियमका पालन करें तथा आरम्भसे ही बच्चोंको अलग-अलग खानेकी आदत डालें।

११-रात्रिको सोनेसे पहले अपने दाँतों एवं मुँहकी अच्छी तरहसे सफाई करें और प्रात: उठनेपर भी यही काम करें।

१२-खाँसी, जुकाम आदि संक्रामक रोगोंमें खाँसते अथवा छींकते समय अपने नाक एवं मुँहके आगे रूमाल रखें, ताकि रोगके जीवाणु फैलने न पायें।

१३-यदि घरमें कोई रोगी हो अथवा आपको रोगीके पास रहना पड़े तो रोग जैसा भी हो, उससे सुरक्षित रहने तथा स्वच्छताके नियमोंका पालन करना अनिवार्य है।

१४-बहुत-से व्यक्तियोंको जगह-जगह थूकते रहनेकी आदत होती है, यह ठीक नहीं है। यदि आपमें भी यह आदत है तो इसे त्याग देवें।

१५-शारीरिक सफाई करते समय बगलों एवं गुप्तेन्द्रियोंकी सफाई करना न भूलें।

१६-हाथ-पाँवके नाखून बढ़ जानेसे इनमें गंदगी भर जाती है, इसलिये नाखून बढ़ने न दें, समय-समयपर उनका छेदन करते रहें।

१७-मुँहद्वारा नाखून काटते रहना, उँगली या अँगूठा चूसना, नाक-कानमें उँगली डालना आदि स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं। अतः इन्हें त्याग देवें।

१८-मुँहद्वारा साँस नहीं लेनी चाहिये, यथासम्भव नाकद्वारा ही साँस लेवें।

१९-रात्रिको सोते समय मुँह ढककर न सोयें।

विश्राम एवं स्वास्थ्य

विश्राम करना स्वास्थ्यके लिये उतना ही आवश्यक है, जितना काम करना। विश्रामसे हमारे शरीरको शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। हमारे शरीरमें कई अङ्ग हैं और ये सभी अङ्ग स्वतन्त्र अथवा सम्मिलित रूपसे अपना-अपना कार्य करते हैं। इन कार्योंके सम्पादनमें ये शक्ति अर्थात् ऊर्जा व्यय करते हैं। यदि इस ऊर्जाकी पूर्ति न हो तो ये कितनी देर कार्य कर पायेंगे! इन अङ्गोंको शक्ति उपलब्ध होती है आहार आदि विभिन्न साधनोंसे, जिनमें विश्रामका भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विश्राम करनेसे श्रमित अङ्गोंको आराम मिल जाता है तथा उनमें फिरसे काम करनेकी क्षमता आ जाती है। इसके अतिरिक्त आजके भौतिकवादी युगमें मनुष्यकी मानसिक उलझनें इतनी बढ़ गयी हैं कि यदि समयपर विश्राम न मिले तो मानसिक दबाव तथा उत्तेजनासे मिरगी, हिस्टीरिया आदि-जैसे रोग हो सकते हैं। अतः मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्यके लिये विश्राम अनिवार्य है।

विश्रामका समय—विश्रामकी दो मुख्य अवस्थाएँ होती हैं—प्रथम कुछ देर विश्राम करना और द्वितीय नींद लेना। प्रथम अवस्थामें विश्राम-हेतु कोई निश्चित नियम नहीं है। जब भी आप शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रमके फलस्वरूप थकान अनुभव करें तो शरीरको ढीला छोड़कर तथा मस्तिष्कको विचारोंसे मुक्त करके कुछ समयके लिये लेट जायँ। ऐसा करनेसे थके हुए स्नायु पुनः क्रियाशील हो जाते हैं।

इसी प्रकार दोपहरके भोजनके पश्चात् भी कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है, किंतु ऐसा केवल ग्रीष्मकालमें करना चाहिये। शीतकालमें विश्राम करना अहितकर है।

द्वितीय अवस्था अर्थात् निद्राके विषयमें निम्न बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है—जो लोग दिनभर अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं, उन्हें कम-से-कम आठ एवं अधिक-से-अधिक दस घंटेकी नींद लेनी चाहिये। जो लोग कम शारीरिक श्रम करते हैं, उन्हें अधिकतम आठ घंटे सोना चाहिये। इसी प्रकार मानसिक कार्य करनेवाले व्यक्तिको भी आठ घंटेसे अधिक नहीं सोना चाहिये। यहाँ यह बात तो निश्चित एवं अन्तिमरूपसे कही जा सकती है कि प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह शारीरिक श्रम करता है अथवा मानसिक, कम-से-कम छः घंटे अवश्य नींद लेनी चाहिये। नन्हें बच्चे काफी अधिक समयतक सोते रहते हैं। इनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका कोई नियम नहीं होता।

आजकी भागती-दौड़ती जिंदगीमें अधिकांश लोग अनिद्रा-रोगके शिकार हो चले हैं। अनिद्राकी अवस्थामें नींद लानेके लिये नींदकी गोलियोंका सेवन करना विशेष हानिप्रद है।

पूर्ण विश्राम-हेतु कुछ अन्य नियम

विश्राम करनेके लिये एकान्त होना आवश्यक है, शोर-शराबेमें अच्छी नींद नहीं आती। विश्राम करते समय किसी प्रकारका मानसिक अथवा शारीरिक तनाव नहीं होना चाहिये। यदि आप मानसिक रूपसे थकान अनुभव कर रहे

हैं तो अत्यन्त आवश्यक है अपने मस्तिष्कको प्रत्येक विचारसे रिक्त कर दें तथा आँखें मूँदकर पड़े रहें। विश्रामके इन क्षणोंमें यदि आप अपनी किसी उलझन या समस्याके विषयमें सोचते रहेंगे तो आपकी थकानमें वृद्धि ही होगी। इसके विपरीत यदि मस्तिष्क खाली रहेगा तो पाँच-सात मिनट बाद ही आप अपनेको तरोताजा महसूस करने लगेंगे। गहरी एवं पूरी नींद लेनेके लिये आवश्यक है कि मनमें किसी प्रकारकी कोई चिन्ता अथवा मानसिक परेशानी न हो।

सोते समय पोशाक ढीली-ढाली होनी चाहिये; क्योंकि तंग लिबाससे विभिन्न शारीरिक अङ्गोंपर दबाव पड़ता है, जिससे इन अङ्गोंके कार्य-सम्पादनके प्राकृतिक क्रममें बाधा उत्पन्न हो जाती है और शरीरको आराम नहीं मिल पाता।

रात्रिको अधिक देरतक जागना और प्रात: देरतक सोये रहना स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। रातको सोने तथा प्रात: उठनेका समय निश्चित करें और सामान्य परिस्थितियोंमें इसमें कोई फेरबदल न करें।

नींद लेनेके पश्चात्—प्रात:काल नींद पूरी होनेपर बिस्तर छोड़नेसे पूर्व सभीको चाहिये कि वे बिस्तरपर अपने शरीरको पूरी तरह फैलाकर कुछ समय लेटे रहें। उसके बाद सारे शरीरपर धीरे-धीरे दोनों हाथ मालिश करनेके ढंगसे घुमाने चाहिये। इससे रक्तसंचार बढ़नेमें सहायता मिलती है। उठनेसे पहले कुछ देर व्यक्तिको बिस्तरपर पेटके बल चित लेटना चाहिये, क्योंकि रात्रिके समय व्यक्ति दायीं या बायीं करवट सोता है। पेटके बल लेटनेसे पेट खुलकर साफ होता है, शरीरको भी आराम मिलता है। रीढ़की हड्डी भी सीधी बनी रहती है।

पेटके बल लेटनेके बाद व्यक्तिको पुन: बिस्तरपर सीधे लेटकर अपने दोनों पाँव सिकोड़कर घुटने छातीतक ले जाने चाहिये और दोनों हाथसे घुटने पकड़कर धीरे-धीरे नीचेको दबाने चाहिये, इससे भी पेट साफ रहता है। बिस्तर छोड़नेसे पूर्व आवश्यक है कि हम अपने हाथ और पैर हवामें घुमाते हुए हलका व्यायाम करें। पैरोंको इस प्रकार चलायें जैसे साइकिल चला रहे हों। इन उपायोंसे शरीरमें और अधिक स्फूर्ति तथा चेतनाका संचार होगा एवं स्वस्थ रहनेमें विशेष सहायता मिलेगी।

पोशाक एवं स्वास्थ्य—पोशाक अर्थात् वस्त्र धारण करनेका अर्थ मात्र सभ्य होनेका परिचय देना नहीं वरन् शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। अत: वस्त्रोंका चयन करते समय यह अवश्य ध्यान रखें कि वस्त्र ऐसे हों जिन्हें पहनकर शरीरकी रक्षा हो सके। इस संदर्भमें जलवायुका ध्यान रखना आवश्यक है। नायलॉन आदि सिंथेटिक वस्त्रोंको यथासम्भव न पहनें। ऐसे वस्त्र स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक होते हैं क्योंकि इनमें पसीना सोखनेकी क्षमता नहीं होती, जिससे त्वचामें संक्रमण होनेका भय रहता है।

चिन्ता एवं स्वास्थ्य—आपने सुना होगा 'चिन्ता चिता समान' चिन्तासे सर्वप्रथम तनाव, तत्पश्चात् शारीरिक अस्वस्थताकी उत्पत्ति होती है। अत: उत्तम स्वास्थ्यके लिये परम आवश्यक है कि हम सभी प्रकारकी चिन्ताओं, क्रोध, द्वेष और तनाव आदिसे दूर रहें।

चिन्ता त्यागकर ही हम स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं और चिन्ता त्यागना कोई कठिन काम भी नहीं है। निम्न बातोंका पालन करनेसे चिन्ता दूर हो सकती है—

१-सदैव प्रसन्न रहें। समस्याओंसे घबरायें नहीं, बल्कि उनका साहसपूर्वक सामना करें। जो लोग समस्याओंसे घबराते हैं, वे हालातके सामने न केवल हार मान लेते हैं, बल्कि अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर लेते हैं।

२-फलकी चिन्ता छोड़कर अपने प्रत्येक उत्तरदायित्वका पालन लगन एवं सचाईसे करें। प्रकृति स्वयं ही इसका फल देगी।

३-हालातसे कभी निराश न हों। जो व्यक्ति निराश हो जाते हैं, वे जीवनको भार मानने लगते हैं। जीवन बोझ नहीं बल्कि एक वरदान है।

४-अपने कर्तव्योंके प्रति निष्ठावान् बनें। कर्तव्य-पालन मनको वास्तविक प्रसन्नता एवं तृप्ति प्रदान करता है।

५-अधिकांश रोगोंकी उत्पत्ति मानसिक असंतोष,

चिन्ता एवं उद्विग्नताके कारण ही होती है। इनसे सदैव बचना चाहिये।

६-कभी किसी बातका वहम नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहम ही प्रत्येक रोगोत्पत्तिका कारण है और इसका कोई उपचार नहीं।

शारीरिक मुद्राएँ एवं स्वास्थ्य—हमारी शारीरिक मुद्राओंका हमारे स्वास्थ्यसे सीधा सम्बन्ध है। जब हम खड़े होते हैं या उठते-बैठते अथवा विश्राम करते हैं, तब हमारे शरीरकी विभिन्न मांसपेशियाँ तथा अङ्ग विशेषरूपसे मेरुदण्ड निरन्तर दबावमें रहते हैं। यदि ये शारीरिक क्रियाएँ त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंके साथ की जायँ तो कमर-दर्द और गर्दन-दर्दके साथ-साथ शरीरके अन्य अङ्गों और जोड़ोंमें भी दर्द उत्पन्न हो सकता है। अपनी त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंको पहचानें तथा उन्हें सुधारनेका प्रयास करें। यदि आप निम्न उपायोंको प्रयोगमें लेते हैं तो अनेकों शारीरिक व्याधियोंसे सुरक्षित रहकर स्वस्थ-जीवन व्यतीत कर सकते हैं—

खड़े होनेकी सही मुद्रा—खड़े होनेकी सही शारीरिक मुद्रा वह है, जिसमें मेरुदण्डपर कम-से-कम दबाव पड़े तथा वह प्राकृतिक रूपसे 'S' के आकारमें रहे। यदि आपको अपने कार्यके प्रकृतिके अनुरूप अधिक देरतक खड़ा रहना पड़ता हो तो अपना एक पैर फर्शकी सतहसे साढ़े चार फीट ऊँचे स्टूलपर रखें, इससे मेरुदंडपर कम दबाव पड़ता है।

बैठनेकी सही मुद्रा—जिन लोगोंको लगातार कई-कई घंटे बैठकर काम करना होता है, उनके लिये आवश्यक है कि वह आरामदेह तथा सुविधाजनक डिजाइनकी कुर्सीका प्रयोग करें। आजकल ऐसी अनेकों कुर्सियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कमरके निचले भागके लिये हलका-सा घुमाव बना रहता है। कुर्सीकी ऊँचाई मेजके अनुरूप होनी चाहिये, ताकि कार्य करते समय आपके कंधों तथा गर्दनपर अनावश्यक दबाव न पड़े।

विश्राम करनेकी सही मुद्रा—विश्राम करनेकी सही मुद्रा आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताओंपर निर्भर है। किसी व्यक्तिको करवटके बल लेटना अधिक भाता है तो किसीको पीठके बल लेटना। किंतु फिर भी विशेषज्ञोंकी रायमें विश्राम करनेकी सर्वश्रेष्ठ मुद्रा पीठके बल लेटनेकी है। इससे मेरुदण्डपर न्यूनतम दबाव पड़ता है।

दुर्व्यसन एवं स्वास्थ्य—धूम्रपान अथवा शराब पीना आज एक फैशन-सा बन गया है, जिसकी दौड़में महानगरोंमें रहनेवाली महिलाएँ भी पीछे नहीं हैं। घरों, उत्सवों या क्लबों इत्यादिमें अधिकांश पुरुष तथा महिलाएँ यूँ सिगरेट फूँकते अथवा शराब पीते नजर आते हैं मानो यह उनके व्यक्तित्वका प्रमुख आकर्षण हो। किंतु वे यह नहीं जानते कि इन दोनों दुर्व्यसनोंसे कैसे-कैसे भयानक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

अमरीकाकी एक मेडिकल रिसर्च कॉउन्सिलद्वारा किये गये सर्वेक्षणके अनुसार धूम्रपान तथा शराब पीनेसे क्षयरोग, हृदयरोग, कैंसर आदि अनेकों मृत्युदायक रोग हो सकते हैं। अतः यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आपको इन दोनों दुर्व्यसनोंको तुरंत त्यागना होगा। इन हानिकारक आदतोंसे न केवल स्वास्थ्यका नाश होता है, बल्कि मनुष्य समाजमें भी प्रतिष्ठा खो बैठता है। अतः दृढ़निश्चय करके इनका तुरंत बहिष्कार कर दें। प्रारम्भमें आपको कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत होंगी, लेकिन यदि आप अपने निश्चयपर अडिग रहे तो सफलता आपको मिलकर ही रहेगी।

मालिश एवं स्वास्थ्य—मालिश सरल एवं उपयोगी व्यायाम ही नहीं बल्कि हमारे शरीरके लिये टॉनिक भी है। मालिशसे रक्त-संचार तीव्र होता है तथा विभिन्न शारीरिक अङ्गोंकी थकान दूर होती है, शरीरमें स्फूर्ति और शक्तिका संचार होता है।

सारे शरीरकी धीरे-धीरे मालिश सरसों, जैतून अथवा बादामके तेलसे करनी चाहिये। अधिक कठोरतासे या बहुत जल्दी-जल्दी मालिश न करें।

रोगग्रस्त व्यक्तियोंकी रोगकी हालतमें मालिश नहीं करनी चाहिये—विशेषकर श्वास-रोगों, पेटके विकारों आदिसे पीडित व्यक्तियोंकी।

मालिश करनेसे पहले या एकदम बाद स्नान अथवा भोजन नहीं करना चाहिये। मालिश करनेके बाद, कम-से-

कम आधा घंटा विश्राम करनेके बाद स्नान करें।

स्वास्थ्यके साथ-साथ मालिश सौन्दर्यके लिये भी लाभप्रद है। मालिशसे चेहरेकी त्वचाका रंग निखर जाता है और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है। इसी प्रकार सिरकी मालिश करनेसे मस्तिष्कको लाभ होता है तथा बाल घने, चमकीले और मजबूत बनते हैं।

उपवास एवं स्वास्थ्य—उपवास एक सरल प्राकृतिक क्रिया है, जो स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। उपवास करनेसे शरीरको आराम मिलता है तथा शरीरकी सफाई होती है। समय-समयपर एक-दो दिनका उपवास साधारण रोगोंके साथ-साथ अनेक असाध्य रोगों—जैसे मधुमेह, बवासीर आदिमें लाभ प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त पाचन-तन्त्रके रोगों, जैसे क़ब्ज़, अपच आदिमें तो उपवास चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है।

उपवास करनेसे पूर्व यह भ्रम मनसे निकाल देना चाहिये कि इससे आप कमजोरी महसूस करेंगे। उपवाससे मन प्रसन्न रहता है तथा स्फूर्ति आती है।

उपवासके दौरान मुँहसे दुर्गन्ध-सी आती महसूस होती है और जीभका रंग सफेद पड़ जाता है। यह इस बातका लक्षण है कि आपके शरीरमें सफाईका काम आरम्भ हो गया है।

क्षय-रोग (टी०बी०) अथवा हृदयरोग-जैसे गम्भीर रोगोंमें उपवास करना अनुचित माना जाता है। इसी प्रकार स्त्रियोंको भी गर्भावस्थामें उपवास नहीं करना चाहिये।

कुछ ऐसे रोग भी हो सकते हैं, जिनमें सिर्फ उपवास करना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि अन्य उपायोंको भी ग्रहण करनेकी जरूरत होती है, इसलिये चिकित्सककी सलाह लेनी चाहिये—विशेषतः उस समय जब किसी रोगके निवारणके लिये लम्बा उपवास करना हो।

उपवास आरम्भ करनेके चौबीस घंटे पहले गरिष्ठ खाद्य पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। फलाहार करना ही उचित है।

उपवास करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। पेटके विभिन्न अङ्ग उपवास-कालमें क्रियाशील नहीं रहते, इसलिये उपवास समाप्त करनेके तुरंत बाद ही ठोस खाद्य पदार्थोंका सेवन न करें। फलोंका रस लेना ही ठीक रहता है।

आरोग्ययुक्त शतायु-प्राप्तिकी कुंजी

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरङ्गबलीजी ब्रह्मचारी)

हविष्यान्नकी आहुति पाकर कड़ुआ धुआँ भी मीठा और सुगन्धियुक्त हो जाता है तथा संखिया-जैसा भयानक विष भी संशोधन करनेपर औषध बन जाता है और समुद्रका खारा जल भी सूर्यकी किरणोंका संस्पर्श पाकर मधुरिमामें बदल जाता है—इसी प्रकार सदाचार, सद्विचार और समता आदिके अनुपालनसे कष्ट एवं क्लेशकारक मूढ चित्तवृत्तियोंका भी शमन हो जाता है तथा आरोग्य-आयु, स्वस्थ, सशक्त, शान्त वृत्तियोंका स्फुरण और जागरण होने लगता है।

यदि हम असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और मृत्युसे अमरत्वकी ओर बढ़ना चाहते हैं, यदि हम निर्बल-दुर्बल, हताश-निराश-उदास मानव-जीवनमें सद्यः एक नयी ज्योति, नयी जागृति, नयी उमंग, नयी तरंग लाना चाहते हैं तब तो हमको बिना ननु-नच, बिना अगर-मगर, बिना किंतु-परंतुका संदेह प्रकट किये, पूर्ण निष्ठाके साथ सदाचार-सद्विचारसे परिपूर्ण आयु-आरोग्यवर्धक खान-पान, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता-संस्कृतिको अपनाना ही होगा।

देश-वेश, मत-पक्षकी भिन्नता होते हुए भी प्रायः सभीमें शारीरिक एवं मानसिक रोगरहित आयु, आरोग्ययुक्त दीर्घजीवन-प्राप्तिकी भावना पायी जाती है। यही कारण है कि भारतीय मनीषियों-ऋषियों और महर्षियोंने पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके माध्यमसे इस मानव-शरीरके लिये आयु-आरोग्यसे युक्त होने तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेकी कामना की है—'**सर्वभूतहिते रताः।**'

मनीषियोंने भगवान् सूर्यनारायणकी स्तुति करते हुए

सौ वर्षोंतक सबको नीरोग होकर, स्वस्थ-सशक्त बनकर जीवित रहने, देखने, सुनने, बोलने तथा अदीन अर्थात् समस्त साधनोंसे सम्पन्न होकर जीवनयापन करनेकी कामना की है। यथा—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजु० ३६। २४)

यद्यपि वैदिक संहिताओंमें आरोग्यके मौलिक सिद्धान्त अनुस्यूत हैं तथापि आरोग्ययुक्त आयुका विस्तृत विवेचन करनेवाला शास्त्र आयुर्वेद ही है। आयुर्वेदका उद्देश्य पुरुषार्थचतुष्टयकी निर्विघ्न एवं सम्यक् प्राप्तिके साधन शरीर और मनको रोगरहित रखना है, किंतु आत्मारहित शरीर और मन आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं हैं। आत्मासे युक्त शरीर और मनवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

रोग-आरोग्य तथा सुख-दुःखका आधार शरीर और मन ही माने गये हैं—

शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।

(च० सू० १।५५)

जैसे मिठाईसे मिठास, खटाईसे खटास, इक्षुदण्ड (गन्ना)-से रस और दुग्धसे घृत निकल जानेपर ये सभी वस्तुएँ निःसार और तेजहीन हो जाती हैं, वैसे ही सदाचार, सद्विचार, संयम और साधनारहित जीवनमें आयु-आरोग्य टिक ही नहीं पाते हैं।

आयुर्वेदमें १०१ प्रकारकी मृत्यु बतायी गयी है, जिसमेंसे सदाचार और सद्विचारके धारण और पालन करनेपर १०० प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंपर सदाचारी विजय पा लेता है। शेष एक तो अनिवार्य है। यथा—

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥

महर्षि चरकका सिद्धान्त है कि जीवनका मूल सदाचार है—

'हितोपचारमूलं जीवितम्।'

आयु-आरोग्यकी वृद्धि और रोगोंकी आमूलचूल निवृत्ति कैसे हो? इस विषयपर आयुर्वेद और अन्य प्रकारकी अनेकों देशी-विदेशी चिकित्सा-पद्धतियोंने अपने-अपने ढंगसे विषय-प्रकाशन और मार्गदर्शन किया है।

इन सभी भिन्न-भिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंके ग्रन्थों और पन्थोंकी अपनी-अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी-अपनी विधियाँ हैं। विधियाँ अनेक हैं। कौन-सी विधि अपनायी जाय? यह प्रश्न प्रायः सबके सामने आता है। विधि वही अच्छी होती है, जिसकी सफलताके अनेकों प्रमाण उपस्थित हों, पथ वही अच्छा होता है, जिसपर अनेकों पथिकोंद्वारा लगाये गये पथ-चिह्न मार्गदर्शनमें सहायक हों।

यह सदाचार-सद्विचारका पथ, जिसे आयुर्वेदसमर्थित योग और वेदान्तका पथ भी कहा जा सकता है। यह ऐसा ही पथ है, यह ऐसी ही चिकित्सा-पद्धति है, जहाँ भिन्न-भिन्न सभी मतों-पथोंका उपसंहार होता है।

यह योगमार्ग आयु-आरोग्य-वृद्धिका प्रवेशद्वार है और वेदान्तमार्गका गन्तव्य स्थान है, जो लोगोंको शाश्वत आरोग्य प्रदान करता है और रोग-दोष, जरा-मरण-जैसी आधियों-व्याधियों-उपाधियोंसे सदाके लिये मुक्त कर देता है। यथा—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेताश्वतर० २।१२)

आचार्य वाग्भटने नीरोग और शतायु मानव-जीवनकी प्राप्तिके लिये निम्नलिखित उपाय बताये हैं—

नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० ४।३७)

अर्थात् नित्य हित (मित) आहार-विहार करनेवाला, सोच-समझकर कार्य करनेवाला, विषयोंमें अनासक्त, दान देनेवाला, हानि-लाभमें सम रहनेवाला, सत्यपरायण, क्षमावान्, आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला पुरुष नीरोग और शतायु होता है।

आचार्य चरकने इस बातको विस्तारसे बताते हुए कहा है—

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

(च० शा० २।४६-४७)

अर्थात् हितकारी आहार-विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर, सहनशील और आप्त पुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन एवं कर्म, अपने अधीन मन और शुद्ध तथा पापरहित बुद्धि जिनके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने तथा योग सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं, उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं होता।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी इसी भावका निर्देश किया है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(६।१७)

महर्षि चरकने नीरोग और दीर्घायुका आधार विशेष रूपसे सदाचारको ही माना है—

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते॥

(च०सू० ८।३१)

अर्थात् जो व्यक्ति स्वस्थवृत्त (सदाचार)-का विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ वर्षोंकी रोगरहित आयुसे पृथक् नहीं होता अथवा सौ वर्षोंतक पूर्ण नीरोग रहता है।

इसके साथ मणि, मन्त्र-धारण, साधु, द्विज, गुरु-संतकृपा, देवपूजा, भगवन्नाम-स्मरण, जप-तप आदिसे भी रोगोंका शमन होता है, आरोग्यकी प्राप्ति होती है और सुख-शान्ति भी मिलती है। सदाचारके सम्यक् सेवन, यम-नियम-पालन, स्वाध्याय, साधना तथा धर्माचरणके नियमोंके पालनसे हमारे देशके महामनीषी कालजयी, चिरजीवी बने थे और उनके संस्मरणसे आज भी व्यक्ति सर्वव्याधिविवर्जित होकर सौ वर्षोंतक जीवित रह सकता है। यथा—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

(आचारेन्दु)

मानसिक स्वास्थ्य और सदाचार

(डॉ० श्रीमणिभाई भा० अमीन)

प्रसिद्ध है कि 'जिस मनुष्यका मन बिगड़ता है, उसका स्वभाव भी बिगड़ जाता है।' असंयम, असत्य, अभिमान, ईर्ष्या, दम्भ, क्रोध, हिंसा और कपट आदि दुर्गुण ही बिगड़े स्वभावके लक्षण हैं। ये सूक्ष्म रोग हैं। दु:स्वभाववाला व्यक्ति इन्द्रियोंके तेज और शक्तिको खो बैठता है और शरीरको भी रोगी बना देता है। अब यहाँ किस दोषसे कौन रोग होता है, थोड़ा इसपर विचार किया जाता है—

(१) असंयम—जीभको असंयमी रखनेसे वह चाहे-जैसे स्वादमें रस लेने लगती है और चाहे-जितना खानेको आतुर रहती है। परिणामस्वरूप पेटमें अधिक अयोग्य भोजन जल चला जाता है और वह पेट या अँतड़ियोंमें रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जीभके असंयमी होनेपर यदि वह चाहे-जैसी वाणी उच्चारण करे तो जीभद्वारा सम्बन्धित मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंको हानि पहुँचती है और कुछ समय पश्चात् जीभ कैंसर या लकवा हो जानेकी स्थितिमें पहुँच जाती है। जन्मसे उत्पन्न गूँगे बालक वाणीके दुरुपयोगका दण्ड इस नये जन्ममें पाते हैं। यह देखकर हमें भी सीखना चाहिये। इसी प्रकार शरीरकी समस्त इन्द्रियाँ भी असंयमी व्यवहारसे ही अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करती हैं।

(२) असत्य—असत्य बोलनेवाले व्यक्तिकी जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोगका भी भोग बन जाता है। जीवनशक्तिका आधार 'तेज' है और

वह 'तेज' असत्यसे नष्ट होता है। असत्य बोलनेवाला तेज-हीन हो जाता है। साथ ही असत्य वाणी बोलनेसे हृदय और मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंकी हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदयके रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगोंसे भी दु:खी हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(३) **अभिमान**—मनुष्यमें वायु, पित्त और कफ—तीनोंको एक साथ संनिपातके रूपमें उत्पन्न करनेवाला अभिमान है और इसीसे किसी कविने कहा है कि ***'पाप-मूल अभिमान'***। यह अभिमान ही मनुष्योंके दुर्गुणोंका राजा है और सब दोषों तथा रोगोंको आकर्षित करके लानेवाला बलवान् लोहेका चुम्बक है। अभिमानी व्यक्ति वायु, पित्त और कफके छोटे-बड़े अनेक रोगोंसे दु:खी रहता है।

(४) **ईर्ष्या**—ईर्ष्या करनेवाले मनुष्यमें पित्त बढ़ जाता है, जिससे उस मनुष्यकी इन्द्रियोंकी तेजस्विता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्यकी बुद्धि और हृदय पित्तके तेजाबमें जल जाते हैं एवं वह किसी काममें प्रगति नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य पित्त, पथरी, जलन, लीवर-खराबी आदि रोगोंसे दु:खित रहते हैं।

(५) **दम्भ**—दम्भी लोग *कफके परिणाममें गड़बड़ उत्पन्न करते हैं। उनके दम्भी स्वभावसे उनमें कफके समान भारीपन आ जाता है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ तेजस्विता छोड़कर स्थूल होती जाती हैं। शरीरकी बुरी बनावट, भारीपन, गैस और इसी प्रकार कफजन्य अनेक रोग दम्भके कारण ही होते हैं।

(६) **क्रोध**—बिगड़े हुए मनसे अशक्य-जैसी अनेक कामनाओंके पूर्ण न होनेसे अथवा उनमें विघ्न आनेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रुद्ध मनुष्य दूसरेकी हानि कर सकेगा या नहीं यह तो दैवाधीन है; परंतु सर्वप्रथम वह स्वयंकी भी हानि करता ही है। क्रोध करनेमें मनुष्यके मस्तिष्कको अपने बहुमूल्य एवं अधिक ओज:शक्तिका उपयोग करना पड़ता है। इस प्रकार अमूल्य ओज नष्ट हो जाता है और परिणामस्वरूप जीवनशक्ति नष्ट होती चली जाती है। तदुपरान्त क्रोधके मस्तिष्कमें आते ही ओजके विशाल एवं विकृत प्रवाहसे मस्तिष्कके ज्ञानतन्तु क्षीण हो जाते हैं। बिजलीका प्रवाह घरमें लगे हुए बल्बको पारिमाणिक मात्रामें आनेपर तो जलाता है, परंतु अधिक मात्रामें आनेपर बल्बको नष्ट कर देता है और कभी-कभी तो घरको भी हानि पहुँचाता है। इससे रक्षा पानेके लिये घरके बाहर फ्यूजकी व्यवस्था की जाती है। संयम और विवेक ही हमारे फ्यूज हैं। इन्हें त्याग देनेपर ओजका अत्यधिक प्रवाह क्रोधके रूपमें उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्कके कितने ही भागोंको जोखिममें डाल देता है। विशेषरूपसे क्रुद्ध मस्तिष्कको अधिक मात्रामें रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। यह रक्तराशि मस्तिष्ककी ओर जानेवाले लघु रक्तप्रवाहको खींच लेता है। क्रोधी मनुष्यके मुख और आँखें कैसी लाल हो जाती हैं, यह सबको अनुभव होगा। हँसते समय मुँह लाल होता है, क्योंकि 'मुँह'की समग्र पेशियाँ विकसित होनेसे हृदयकी ओरसे खून खिंच आनेसे ऐसा होता है। विशेष शुद्ध खून मिलनेसे, वैसी ही पेशियाँ पुलकित होनेसे यह लालिमा लाभप्रद है और सौन्दर्यवर्धक भी है। परंतु ठीक इसके विपरीत क्रोधीकी शक्ल बिगड़ती जाती है और उसके बुद्धि, बल भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।

(७) **हिंसा**—हिंसा क्रोध और अभिमानसे उत्पन्न होती है। इसमें प्रवृत्त रहनेवाले व्यक्तिका रक्त सदा खौलता एवं गर्म रहता है। हिंसामें मस्तिष्क और हृदय दोनों गंदे होते हैं। अभिमान और क्रोधसे उत्पन्न रोगोंके उपरान्त ऐसे मनुष्यमें हृदयसे उत्पन्न रोग भी होते हैं। पराया दु:ख देखकर जो हृदय एकदम नरम बनकर द्रवित होने लगता है, वही हृदय अपने दु:खोंके सामने वज्र-जैसा कठोर भी बन जाता है। यह हृदयकी सत्य और वास्तविक स्थितिका गुण है। हिंसावाले मनुष्यके हृदयके ये गुण नष्ट हो जाते हैं। वह लोगोंका दु:ख देखकर हँसता है और अपने ऊपर दु:ख पड़नेपर निम्नश्रेणीका भीरु बन जाता है। तत्पश्चात् हृदयमें और सम्पूर्ण शरीरमें गर्म रक्त भ्रमण

* किंतु अथर्वपरिशिष्ट ६८ एवं 'योगरत्नाकर' आदिमें कफप्रकृतिवालोंको ही सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा कहा गया है।

करनेसे शरीरमें वायु, पित्त और कफ—इन तीनोंको उत्पन्न करता है, जिससे वह महाभयंकर रोगोंका शिकार बन जाता है।

(८) **छल-कपट**—कपट करनेवाला व्यक्ति भी सूक्ष्मरूपसे हिंसा ही करता है। परंतु उसकी हिंसा करनेकी युक्ति मायामय—कपटमय होनेसे दिखायी नहीं देती। वह साधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसावाले व्यक्तिके समान ही रोगोंका शिकार बन जाते हैं। परंतु उसे जो रोगोंका दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करनेवाले विषके समान ही होता है।

वेदोंमें स्वस्थ-जीवनके मौलिक सूत्र

(डॉ० श्रीभवानीलालजी भारतीय एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवजीवनका लक्ष्य है, पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्तिमें आरोग्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कहा भी गया है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च० सू० १।१५)

महाकवि कालिदासने शिव-पार्वती संवादमें एक महत्त्वपूर्ण उक्ति लिखी है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**'

शरीर ही धर्मकी साधनाका प्रमुख साधन है। यह तो सत्य है कि मानवशरीर पाञ्चभौतिक होनेके कारण नश्वर है, अन्ततः नष्ट होनेवाला है, तथापि वह ऐसी क्षुद्र वस्तु भी नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाय। जब कबीरने मानवशरीरको 'पानीका बुदबुदा' बताया तो उनका भाव यही था कि सीमित कालावधिके लिये जन्म लेनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह यथाशीघ्र परमात्माको पहचाने तथा श्रेयोमार्गका पथिक बने।

वैदिकसंहिताओंमें मानवको स्वस्थ तथा नीरोग रहनेकी बार-बार प्रेरणा दी गयी है। वस्तुतः वेद मानवके हितकी विधाओं तथा विज्ञानोंका भण्डार है, भगवान् मनुके अनुसार वेद पितर, देव तथा मनुष्योंके मार्गदर्शनके लिये सनातन चक्षुओंके तुल्य हैं, जिनसे लोग अपने हित और अहितको पहचानकर कर्तव्याकर्तव्यका निर्धारण कर सकते हैं। मानव-स्वास्थ्यके लिये उपयोगी शरीरविज्ञान तथा स्वास्थ्यरक्षाका विशद निरूपण इस वाङ्मयमें उपलब्ध है। वेदोंकी दृष्टिमें यह शरीर न तो हेय है और न तिरस्कारके योग्य।

वेदोंमें मनुष्यके लिये दीर्घायुकी कामना की गयी है, जो शरीर-नीरोग होनेसे सम्भव है। '**आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता**ᳪ**श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्**' (यजु० ९।२१)—आदि मन्त्रोंमें मनुष्यके दीर्घायु होने तथा स्वजीवनको लोकहित (यज्ञ)-में लगानेकी बात कही गयी है। यह तभी सम्भव है जब उसके चक्षु तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ और पञ्चप्राण पूर्ण स्वस्थ एवं बलयुक्त रहें। वेदोंमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको बलिष्ठ, स्वस्थ तथा यशस्वी बनानेके लिये कहा गया है। '**प्राणश्च मेऽपानश्च मे**' (यजु० १८।२) मन्त्रमें प्राण, अपान तथा व्यान आदिको स्वस्थ रखनेके साथ-साथ वाक्, मन, नेत्र तथा श्रोत्र आदिको भी बलयुक्त रखनेकी बात कही गयी है।

संध्योपासनाके अन्तर्गत उपस्थान-मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि उसके नेत्र, कान तथा वाणी आदि इतने बलवान् हों, जिनसे वह सौ वर्षपर्यन्त पदार्थोंको देखता रहे, शब्दोंको सुनता रहे, वचनोंको बोलता रहे तथा स्वस्थ एवं सदाचारयुक्त-जीवन जीता रहे। केवल सौ वर्षपर्यन्त ही नहीं, उससे भी अधिक '**भूयश्च शरदः शतात्**'। वैदिक उक्तिमें शरीरको पत्थरकी भाँति सुदृढ़ बनानेकी बात कही गयी है—'**अश्मा भवतु ते तनूः**'।

आरोग्यलाभके विविध साधनों तथा उपायोंकी चर्चा भी वेदोंमें आयी है। उषःकालमें सूर्योदयसे पूर्व शैय्यात्यागको स्वास्थ्यके लिये अतीव उपयोगी बताया गया है। इसलिये वेदोंमें उषाको दिव्य ज्योति प्रदान करनेवाली तथा सत्कर्मोंमें प्रेरित करनेवाली देवीके रूपमें चित्रित किया गया है। जब प्रातःकालमें संध्याके लिये बैठते हैं तो हम उपस्थान-मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं। उसी समय हमें पूर्व दिशामें भगवान् भास्कर उदित होते दिखायी देते हैं। इस पवित्र

तथा स्फूर्तिदायिनी वेलामें साधक एक ओर तो आकाशमें उदित होनेवाले मार्तण्डको देखता है, दूसरी ओर वह अपने हृदयाकाशमें प्रकाशयुक्त परमात्माके दिव्य लोकका अनुभव कर कह उठता है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

(यजु० २०।२१)

अर्थात् अंधकारका निवारण करनेवाला यह ज्योति:पुञ्ज सूर्य प्राची दिशामें उदित हुआ है, यही देवोंका देव परमात्मारूपी सूर्य मेरे मानस-क्षितिजपर प्रकट हुआ है और इससे नि:सृत ज्ञानरश्मियोंकी ऊष्माका मैं अपने अन्त:करणमें अनुभव कर रहा हूँ।

यो जागार तमृचः कामयन्ते (ऋक्० ५।४४।१४) ऋग्वेदकी इस ऋचामें स्पष्ट कहा गया है कि जो जागता है, जल्दी उठकर प्रभुका स्मरण करता है, ऋचाएँ उसकी कामना पूरी करती हैं। सामादि अन्य वेदोंका ज्ञान भी उष:कालमें उठकर स्वाध्यायमें प्रवृत्त होनेवाले व्यक्तिके लिये ही सुलभ होता है। आलसी, प्रमादी, दीर्घसूत्री तथा देरतक सोते रहनेवाले लोग सौभाग्य और आरोग्यसे वञ्चित रहते हैं। जल्दी उठकर वायुसेवनके लिये भ्रमण करना चाहिये। इस सम्बन्धमें वेदका कहना है कि पर्वतोंकी उपत्यकाओंमें तथा नदियोंके संगमस्थलपर प्रकृतिकी छटा अवर्णनीय होती है। यहाँ विचरण करनेवाले अपनी बुद्धियोंका विकास करते हैं—

उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥

(ऋक्० ८।६।२८)

शरीरको स्वस्थ और नीरोग रखनेके लिये शुद्ध, पुष्टिदायक, रोगनाशक अन्न तथा जलका सेवन आवश्यक है। जलके विषयमें वेद कहता है—'**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे**' (यजु० ११।५०)। भाव यह है कि जल हमें सुख प्रदान करनेवाला तथा ऊर्जा प्रदान करनेवाला हो।

अन्नविषयक अनेक मन्त्र वेदोंमें आये हैं। जिन पुष्टिकारक व्रीहि, गोधूम, मुद्ग आदि अन्नोंका हम सेवन करें, उनकी गणना निम्न मन्त्रमें की गयी है—'**व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे**···· **गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्**' (यजु० १८।१२)।

भोजनमें गोदुग्धका सेवन अत्यन्त आवश्यक है। वेदोंमें गोमहिमाके अनेक मन्त्र आये हैं। गायकी महत्ताका वर्णन करते हुए उसे रुद्रसंज्ञक ब्रह्मचारियोंकी माता, वसुओंकी दुहिता तथा आदित्यसंज्ञक तेजस्वी पुरुषोंकी बहिन कहा गया है—'**माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः**' (ऋक्० ८।१०१।१५)।

अथर्ववेदके मन्त्रमें गायोंको सम्बोधित कर कहा गया है कि आप कृश तथा दुर्बल व्यक्तिको पुष्ट और स्वस्थ बना देती हैं। उसके शरीरकी सौन्दर्यवृद्धिका कारण आपका दुग्ध ही है। '**यूयं गावः**' आदि अथर्व-मन्त्र इसके प्रमाण हैं। अन्नके विषयमें वेदमें कतिपय आवश्यक निर्देश मिलते हैं। प्रथम तो यह कहा गया है कि अन्नपति परमात्मा ही हैं। वे ही हमें रोगरहित तथा बलवर्द्धक अन्न प्रदान करते हैं। वे इतने उदार तथा समदर्शी हैं कि दो पैरोंवाले मनुष्यों तथा चौपाये जानवरों—सभी प्राणियोंको अन्न प्रदान करते हैं—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

(यजु० ११।८३)

भोजनके विषयमें एक अन्य प्रसिद्ध मन्त्र निम्न है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋक्० १०।११७।६)

अर्थात् अकेला खानेवाला, अन्योंको भोजनादिसे वञ्चित रखनेवाला वास्तवमें पाप ही खाता है। ऐसा स्वार्थी व्यक्ति न तो स्वयंको ही पोषित करता है और न अपने मित्रोंको। भगवान् श्रीकृष्णने वेदकी इसी उक्तिको इस प्रकारसे बताया—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३।१३)

जो पापी अपने लिये ही पकाते हैं, वे वस्तुतः पाप ही

खाते हैं। आहार और अन्नकी शुद्धताके अनेक निर्देश वेदाश्रित उपनिषदादि ग्रन्थोंमें भी मिलते हैं, वहाँ कहा गया है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥

(छा० उ० ७।२६।२)

अर्थात् सात्त्विक आहार-ग्रहण करनेसे मनकी शुद्धि होती है और मनके शुद्ध होनेपर अविचलित स्मृति प्राप्त होती है। उपनिषदोंमें ही अन्नकी निन्दा न करनेका उपदेश दिया गया है—'**अन्नं न निन्द्यात् तद् व्रतम्**'। भोजन आदिकी भाँति शान्त और स्थिर निद्रा भी आरोग्यके लिये आवश्यक है। ऋग्वेदीय रात्रिसूक्त (१०।१२७)-में इसका सुन्दर विवेचन हुआ है। रात्रिमें उचित समयपर सोना स्वास्थ्यके लिये जरूरी है। वेदमें रात्रिको द्युलोककी पुत्री कहा गया है। यह रात्रि वस्तुत: उष:कालमें बदलकर अन्धकारका विनाश करती है—'**ज्योतिषा बाधते तमः**' (ऋक्० १०।१२७।२)।

मनुष्यका नीरोग और स्वस्थ रहना केवल शरीररक्षणसे ही सम्भव नहीं है। इसी अभिप्रायसे उपनिषद् पञ्चकोशोंका उल्लेख करते हैं, जिनमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय कोशके बाद ही विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोशकी चर्चा हुई है। स्वस्थ प्राणशक्ति आरोग्यका प्रमुख कारण बनती है। वेदोंने तो प्राणोंको परमात्माका ही वाचक माना है—'**प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे**' (अथर्व० ११।४।१)।

इसी अभिप्रायको भगवान् बादरायणने अपने सूत्र '**अतएव प्राणः**' में कहा है। प्राण नामसे परमात्मा ही कथित हुए हैं।

आरोग्यका एक महत्त्वपूर्ण साधन है ब्रह्मचर्य। इसके पालनकी महिमाके लिये अथर्ववेदका ब्रह्मचर्य-सूक्त द्रष्टव्य है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मचर्यरूपी तपके द्वारा विद्वान् देवगण मृत्युपर भी विजय पा लेते हैं—'**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत**' (अथर्व० ११।५।१९)।

अथर्ववेदमें रोग, रोगके कारणों, उनके निवारणके उपायों, रोगनाशक औषधियों एवं वनस्पतियों तथा रोग दूर करनेवाले वैद्यों (भिषक्) आदिकी विस्तृत चर्चा मिलती है। ये सभी प्रकरण शारीरिक स्वास्थ्यसे ही सम्बद्ध हैं। मनोवैज्ञानिक चिकित्साके संकेत भी वेदोंमें मिलते हैं। '**यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं०**' (यजु० ३४।१—६) आदि मन्त्र मनकी दिव्य शक्तियोंका उल्लेख कर उसे शिवसंकल्पवाला बनानेकी बात करते हैं। स्पर्शपूर्वक रोगनिवारणके संकेत भी अथर्ववेदके '**अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः**' (अथर्व ४।१३।६) आदि मन्त्रोंमें मिलते हैं, जिसमें सहानुभूतिप्रवण वैद्यका कोमल स्पर्श रोगीके लिये औषधिका काम करता है।

(प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल)

स्वस्थ रहनेकी आदर्श जीवनचर्या

(प्रो० श्रीवेणीमाधव अश्विनीकुमारजी शास्त्री एम्०ए०, भिषगाचार्य)

महर्षि चरकके आयुर्वेदीय जीवनसिद्धान्तमें आयुके साथ हित एवं अहित तथा सुख एवं दु:ख—इन दो स्थितियोंको देखा गया है। इनमें हित एवं सुख-आयुका पर्याय स्वस्थ जीवन होता है तथा अहित एवं दु:ख-आयुका पर्याय रोगग्रस्त जीवन होता है। इसी अन्वेषणपर मानव-जीवनके अध्ययनके चिकित्सापरक आयुर्वेदविज्ञानमें चिकित्साके दो उद्देश्य स्पष्ट किये गये हैं—

१-स्वस्थकी ऊर्जा-वृद्धि करके दीर्घ जीवन।

२-रोगीके रोगका शमन करके प्रकृति-स्थापनद्वारा दीर्घ जीवन।

इसीलिये चरकके चिकित्सास्थान १।३ में महर्षि अग्निवेशने चिकित्साके पर्यायोंमें पथ्य तथा साधन—इन दो शब्दोंका प्रयोग किया है। इनमेंसे पथ्य आहार और विहार दोनोंकी पूर्तिके लिये प्रयुक्त किया गया है तथा साधनद्वारा उन उपायोंका उल्लेख किया गया है, जिनसे हमारे शरीरके घटक साम्यावस्थामें बने रहें और हम स्वस्थ रहें।

काल, अर्थ और कर्म व्याधियोंके सर्वव्यापक कारण माने जाते हैं और इनसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदज्ञोंने

स्वस्थवृत्तके विधानका उद्देश किया है। स्वास्थ्यके अनुवर्तन-हेतु तथा विकारोंकी उत्पत्तिका प्रतिबन्धन करनेके लिये नित्य प्रयोजनीय विषय निम्न प्रकारसे चरकसंहिताकारने सूत्रस्थान पाँचमें वर्णित किये हैं—

१. आहार (पोषण), २. विहार (शारीरिक चर्या) और ३. सद्वृत्त (मानसचर्या)।

१. आहार

आहारको मानवदेहका पोषक और धारक माना गया है। इसीलिये चरकसूत्र २८। ३ में आचार्यने आहारके देहधारकत्व और पोषकत्वके विषयमें लिखा है कि विधिवत् सेवित आहार शरीरका उपचय कर बल, वर्ण तथा सप्त धातुओंको ऊर्जा प्रदान करके सुख, आयुष्य और रोगप्रतिबन्धनका फल प्रदान करता है। इसीलिये चरक-सूत्रस्थान (२७। ३४९-५०)-में कहा गया है कि—

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।

आहारका विधिपूर्वक सेवन करनेके लिये आचार्यने नियम (उपदेश) किये हैं, उनमें सर्वप्रथम आहार-मात्राका नियमन है। मात्राको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये सात्म्य और असात्म्य दो प्रकारके आहार-प्रभावको ध्यानमें रखकर व्यावहारिक पद्धतिका निर्देश किया गया है। असात्म्य आहार आयुर्वेदिक सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिविरुद्ध होकर वात, पित्त, कफ—इन दोषों और रस, रक्त आदि धातुओं तथा स्वेद-मूत्रादि मलों एवं उपधातुओं, त्रयोदश अग्नियों तथा स्रोतस्-विशेषको दूषित करते हैं। इसीको दोषवैषम्य या धातुवैषम्यके नामसे रोग-सम्प्राप्तिका प्रथम सोपान माना जाता है। इसीलिये महर्षि चरकने शरीरोपयोगी आहार, नियमन और सन्तुलित लाभ प्राप्त करनेके लिये आठ प्रकारकी आहारविधि—विशेषायतन निर्धारित किये हैं—१. प्रकृति, २. करण, ३. संयोग, ४. राशि, ५. देश, ६. काल, ७. उपयोग-संस्था तथा ८. उपयोक्ता।[१]

(१) आहारका परीक्षण सर्वप्रथम प्रकृति-परीक्षणसे प्रारम्भ करना चाहिये। आहारोपयोगी द्रव्योंमें जो स्वाभाविक भिन्नता गुरु तथा लघु आदि रूपमें पायी जाती है, वह व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार चिकित्सकद्वारा निर्धारित की जानी चाहिये।

(२) करणपरीक्षामें स्वाभाविक द्रव्योंका संस्कार समाविष्ट होता है। संस्कारके द्वारा द्रव्यकी प्रकृतिमें गुणानुसन्धान किया जाता है। यह कार्य द्रव्यके ऊपर जल, अग्नि, मन्थन, देश, काल, वासना और भावनाके द्वारा किया जाता है।

(३) एक, दो या तीन द्रव्योंका संयोग करके सेवन करनेपर विशिष्ट गुणकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे—दूध, चावल तथा शक्कर मिला देनेपर अग्नि-संस्कारद्वारा उत्पन्न खीरका भोजन पृथक्-पृथक् दूध, शर्करा एवं चावलके गुणोंसे विशेष गुणवाला होता है।

(४) आहारकी मात्राका निर्धारण राशिके रूपमें दो प्रकारसे किया जाता है—(१) सर्वग्रह एवं (२) परिग्रह। सर्वग्रहका तात्पर्य मात्रात्मक तथा परिग्रहका तात्पर्य घटक तत्त्वोंकी मात्रामें रसोंकी तरतम मात्रासे है।

(५) देशनिर्णयमें आहारद्रव्योंकी उत्पत्ति और प्रयोगका विचार किया जाता है तथा देश-विशेषमें सात्म्यताका भी आहारनिर्णयमें विचार किया जाता है।

(६) कालसे आहारका सम्बन्ध दो प्रकारसे है—(१) नित्य व्यक्त होनेवाले अहोरात्रादि कालरूपमें तथा (२) व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित आयुवर्गके रूपसे अहोरात्रादि-कालमें ऋतुचर्याका अनुशीलन तथा आवस्थिक कालसे विकासकी अवस्थाका अनुशीलन आहारनिर्णयमें करना चाहिये।

(७) इस क्रममें आहारप्रयोगका नियमपूर्वक आहारकी मात्रा जीर्ण होनेपर अपर आहारका सेवन विचारके योग्य होता है।

(८) उपयोक्तामें व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित यह निर्णय व्यक्तिके अभ्यास एवं परम्परासे क्या सात्म्य है, क्या असात्म्य है इसका विचार अपेक्षित होता है।

आहारनिर्णयके उक्त बिन्दुओंके अतिरिक्त आहारकी गुणवत्ता तथा पोषकताको बढ़ानेके लिये शरीरकी दोष-धातु

१.तत्र खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति तद्यथा—प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि। (विमानस्थान १। २१)

एवं मलकी रचनाओंको प्राकृत बनानेके लिये विभिन्न प्रकारके अभ्यास और व्यावहारिक नियम भी चरकसंहितामें निर्देशित किये गये हैं।[१] जैसे—

(१) उष्ण भोजन स्वादिष्ठ लगता है और भोजन करनेपर अग्निकी दीप्ति होती है, जिससे भोजन शीघ्र परिपाकको प्राप्त होता है, कोष्ठस्थ वायुका अनुलोमन होता है तथा कोष्ठस्थ श्लेष्माका ह्रास होकर आहार गुणवान् हो जाता है।

(२) स्निग्ध भोजनसे स्वादकी वृद्धि, भोजन करनेपर अदीप्त अग्निकी दीप्ति, शीघ्र परिपाक, कोष्ठस्थ वातानुलोमन, शरीरका उपचय, इन्द्रियोंका पोषण, बलकी वृद्धि तथा वर्णप्रसाद-उत्पत्तिका लाभ होता है।

(३) मात्रावत् आहारसेवन करनेसे कुक्षिमें स्थित वात, पित्त, कफ-दोषोंका वैषम्य नहीं होता, परिपाक यथासमय होकर सुखपूर्वक मलविसर्जन होता है। अग्निका संरक्षण होता है तथा बिना किसी कष्टके परिपाक हो जाता है।

(४) पूर्व आहार जीर्ण होनेपर (सम्यक्-रूपसे पच जानेपर) ही अपर आहारका सेवन करना चाहिये। अजीर्ण आहारके ऊपर भोजन करनेसे आम-दोषकी उत्पत्ति होकर सर्वदोषप्रकोप होनेकी सम्भावना होती है।

(५) आहारका संयोग परस्पर-विरुद्ध वीर्य-द्रव्योंके रूपमें नहीं होना चाहिये अन्यथा विरुद्ध वीर्यजन्य विकृतियाँ सम्भावित होती हैं, जैसे—कुष्ठ, अन्धत्व, विसर्प आदि।

(६) आहारके लिये समुचित एवं निर्धारित स्थानका ही व्यवहार होना चाहिये। जहाँ चाहे, वहाँ भोजन करना ठीक नहीं। इस नियमसे स्थानकी अशुद्धियाँ दूर होती हैं तथा वातावरणसम्बन्धी दूषित मानसिक भावोंकी मुक्ति हो जानेसे शुद्ध मनसे आहारकी गुणवृद्धि होती है। आहारके उपयोगके समय प्रयोग होनेवाले पात्र आदि उपकरणोंका पूर्णरूपसे आहारकी सुरक्षा तथा संरक्षणपर प्रभाव पड़ता है, अतः इन सभीका इष्ट और स्वच्छ होना आवश्यक है।

(७) शीघ्रतामें भोजन करनेसे भोजनका सम्यक् चर्वण न होनेके कारण क्लेदन और उसका संघातभेदन भी नहीं हो पाता, इसके साथ-साथ कभी-कभी शीघ्रतासे भोजन करनेसे भोजन अन्न-नलिकाके स्थानपर श्वास-नलिकामें भी प्रवेश कर जाता है। अतः भोजन अति द्रुतगतिसे नहीं करना चाहिये।

(८) अतिविलम्बित गतिसे भोजन करनेपर तृप्ति नहीं होती, भोजन अतिमात्रामें सेवित हो जाता है, आहार ठंडा हो जाता है, फलतः उसका परिपाक भी विकृत हो जाता है।

(९) भोजन करते समय आहार श्वास-नलिकामें प्रवेश कर सकता है। अतः ऐसी अवस्थामें बातें नहीं करनी चाहिये। आहारसेवनके समय हँसनेपर भी उपर्युक्त दोष होता है। साथ ही भोजन करनेमें मन लगाकर भोजन करना चाहिये।

(१०) व्यक्तिको आहार ग्रहण करते समय सेवित आहारके विषयमें सात्म्यता और असात्म्यताका ध्यान रखकर अपने शरीर और आयुका हित-विवेचन, चिन्तन करते हुए आहारका विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये।

स्वास्थ्यके लिये उक्त आहार हितकारी तथा विकारोंका प्रतिबन्धन करनेवाली प्रणालीका परिपालन करनेसे न केवल शरीर स्वस्थ रहता है, अपितु शरीरके मूल घटक—वात, पित्त, कफ-दोष साम्य-अवस्थामें रहते हैं।

२. विहार

जहाँतक शरीरको स्वस्थ और व्याधि-प्रतिबन्धित रखनेके लिये बाह्य-जीवनोपयोगी कर्म-समुदायका सम्बन्ध है, वह सब आयुर्वेदमें योगारूढ संज्ञाके आधारपर विहारके नामसे जाना जाता है। इसमें दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा सद्वृत्त पालन आदिके नियमोंका समावेश होता है।

दिनचर्या— शय्यात्यागके बाद व्यक्तिको स्वयं एक क्षण विचार करके देखना चाहिये कि मेरी शारीरिक स्थिति नित्य-जैसी है या कुछ विचार करने योग्य है, यदि किसी भी प्रकारकी प्रतिकूल वेदना हो तो उसका यथाशक्य समाधान वैयक्तिक स्तरपर अथवा अपने पारिवारिक चिकित्सकके परामर्शसे अवश्य कर लेना चाहिये, ऐसा करनेसे व्याधि-सम्बन्धित आपात स्थितियोंको समाधान-योग्य बनाया जा सकता है। यदि उपेक्षा की जाय तो छोटी-से-छोटी व्याधि भी महान् कष्टदायी हो सकती है।

१. उष्णं स्निग्धं मात्रावत्, जीर्णे वीर्याविरुद्धम्, इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणम्, नातिद्रुतम्, नातिविलम्बितम्, अजल्पन्, अहसन् तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्। (विमानस्थान १।२४)

मलत्याग—प्रातः शय्यात्यागके उपरान्त मलविसर्जन करके मुखप्रक्षालन करना चाहिये।

मंजन और दन्तधावन—सुविधा एवं रुचिके आधारपर दातौन और मंजनका प्रयोग करना चाहिये। इससे दाँतोंमें चिपके हुए मल तथा जीवाणु दूर होते हैं। दातौनके लिये तिक्तरसके रूपमें नीमकी, कषायरसके रूपमें बबूलकी तथा मधुर रसके रूपमें महुएकी दातौन श्रेष्ठ और जीवाणुनाशक एवं शरीर-रचनाओंका पोषण करनेवाली मानी गयी है। मंजन अनेक प्रकारके अपनी परम्परा और सुविधाके अनुसार प्रयोग किये जा सकते हैं।

जिह्वा-शोधन—मुखशुद्धि और दन्तशुद्धिके बाद स्वर्ण, रजत या ताम्र अथवा लोहेसे निर्मित जीभीसे जिह्वापर संचित मलको दूर करना चाहिये।

अंजन—नेत्रोंकी सुरक्षा और दृष्टिका प्रसाधन करनेके लिये नित्य अंजनका प्रयोग करना चाहिये। पाँच या आठ दिनके अन्तरसे रसांजनका प्रयोग करना चाहिये। अंजनके प्रयोगसे दृष्टि दर्पणकी तरह स्वच्छ और तेजोमय हो जाती है। श्लेष्मासे होनेवाली व्याधियाँ प्रतिबन्धित होती हैं तथा दृष्टि निरन्तर निर्मल बनी रहती है। कतिपय आधुनिक नेत्रचिकित्सक यह भ्रान्ति पैदा करते हैं कि अंजन करनेसे नेत्र और दृष्टिकी हानि होती है—यह विचार स्वयंमें भ्रामक तो है ही, साथ ही बिना प्रयोग किये और फल देखे अज्ञानताका परिचायक भी है।

धूम्रवर्तिसेवन—शरीरके सबसे उपयोगी श्वासवह-संस्थानके मूल नासारन्ध्रोंको शुद्ध रखनेके लिये आयुर्वेदिक धूम्रसेवन भारतीय चिकित्सा-विज्ञानकी अतिविशिष्ट एक मौलिक विधि है। धूल, धूम, धूप, आधुनिक ठंडे पेय, चॉकलेट, फास्टफूड, आइस्क्रीम और फ्रिज आदिमें रखे गये आहारके अत्यधिक प्रयोगसे सबसे ज्यादा नशा तथा उससे सम्बन्धित अवयवोंको हानि पहुँचती है। यह हानि प्रतिश्याय, पीनस, नासार्श, शिरःशूल, तुंडिकरी तथा स्वरभेदके रूपमें उमड़ती है। इनसे बचनेके लिये धूम्रवर्तिका सेवन अत्यन्त लाभकारी उपाय है।[१]

नस्य—स्वस्थ-हित-नस्य पञ्चकर्मके अन्तर्गत परिगणित नस्य-कर्मसे पृथक् है। इसका प्रयोग वर्षा, शरद् और हेमन्त-ऋतुमें स्वच्छ आकाशवाले दिनोंमें करना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेदकी अणुतेल-विधिका प्रयोग करना चाहिये। इस नस्यसे चक्षु, नासा, कर्ण तथा इन्द्रियोंकी रोगोंसे प्रतिरक्षा होती है तथा बालोंका पालित्य (असमयमें सफेद होना) भी नहीं होता।

मुखशुद्धि—मुखमें सुगन्ध और रसज्ञानकी उत्तमता बनाये रखनेके लिये जायफल, सुपारी, लवंग, कंकोल, छोटी इलायची तथा शुद्ध कर्पूरयुक्त पानका सेवन भोजनान्तमें करना चाहिये। इनके प्रयोगसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है तथा सामान्य मुख-रोगोंका प्रतिबन्धन होता है।

तेल-गण्डूष—तिल-तेलको जलकी तरह मुखमें भरकर कुछ समयतक उसका कुल्ला करनेके रूपमें परिचालन करते हुए थूक देना चाहिये। इस प्रकारका प्रयोग रोगविशेषमें औषधिसिद्ध तेलोंसे भी किया जाता है। स्नेहगण्डूष धारण करनेसे हनु-संधिको बल मिलता है, मुखकी पुष्टि होती है, स्वर उत्तम होता है, रसज्ञान श्रेष्ठ होता है, आहारमें रुचि उत्पन्न होती है। कण्ठशोष, ओठोंका फटना, दन्तक्षय, दाँतोंका हिलना आदि तेल-गण्डूषके प्रयोगसे प्रतिबन्धित होते हैं।

शिरोऽभ्यङ्ग—नित्यप्रति सिरमें तिल अथवा नारियलका तेल या औषधिसिद्ध तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। अभ्यङ्गके लिये तेलकी इतनी मात्रा होनी चाहिये, जिससे बाल पूरी तरह स्नेहाक्त हो जायँ। यह परम्परा दक्षिण भारत (केरल)-में आज भी प्रचलित है। शिरोऽभ्यङ्गसे शिरःशूल तथा पालित्यको रोका जा सकता है। चक्षु एवं कर्णेन्द्रियके रोगोंका प्रतिबन्धन होता है। मुखकी त्वचा कोमल तथा मधुर निद्राकी प्राप्ति होती है।

कर्णतर्पण—प्रतिदिन एक-एक बूँद तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेल कानोंमें डालना चाहिये, इससे वातजन्य कर्णव्याधियाँ, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा बाधिर्यका प्रतिबन्धन होता है।

शरीर-अभ्यङ्ग—नित्यप्रति स्नानसे पूर्व सम्पूर्ण शरीरके ऊपर तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। इससे शरीर इस प्रकार मुलायम और स्निग्ध

१. इसका प्रयोग एवं विधि चरक सूत्रस्थान ५। २०—५५ में द्रष्टव्य है।

हो जाता है, जैसे स्नेहके द्वारा मिट्टीका घड़ा और चर्म चिकना हो जाता है। अभ्यङ्गसे दृढ़ता और परिश्रम करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। त्वचामें स्थित वातनाडियोंको श्रेष्ठ प्रकारका पोषण मिलता है। इससे विविध प्रकारके त्वचासम्बन्धी रोगोंका शमन होता है। उष्ण एवं शीतको सहन करनेकी क्षमता श्रेष्ठ हो जाती है।

पादाभ्यङ्ग—दोनों पैरोंके तलवोंमें नित्य तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करनेसे वायुका शमन होता है। दृष्टि-सुख प्राप्त होता है। पैरोंमें स्वच्छता, खरता, स्तब्धता और श्रमका शमन होता है। पैर स्थिर एवं बलवान् होते हैं। गृध्रसी तथा पादस्फुटन, खल्लीशूल आदिका पूरी तरह प्रतिबन्धन होता है।

स्नान—अभ्यङ्ग-कर्म करनेके बाद शारीरिक शुद्धिके लिये यथा-ऋतु एवं सात्म्यताके अनुसार उष्ण या शीत जलसे स्नान करना चाहिये। स्नान करनेसे स्वेद एवं शारीरिक दुर्गन्ध दूर होती है। स्फूर्ति प्राप्त होती है। श्रम और तन्द्रा दूर होकर क्रियाशीलता बढ़ती है। अन्तराग्निका संदीपन होकर शरीरमें बलवृद्धि तथा ऊर्जावृद्धि होती है।

शुद्ध वस्त्रधारण—निर्मल वस्त्र-धारण करनेसे शरीरमें आकर्षण, आयु तथा श्रीकी वृद्धि होती है, दरिद्रताका नाश होता है।

सुगन्ध-मालाधारण—सुगन्धित पुष्पमाला धारण करनेसे वृष्य तथा आयुकी वृद्धि होती है।

आभूषणधारण—माङ्गलिक तथा हर्ष प्रदान करनेवाले, व्यक्तित्वमें प्रकाश करनेवाले और अनेकों प्रकारके लाभ प्राप्त करानेवाले रत्न, आभूषणधारण भारतीय परम्परामें अङ्गभूत हैं, इनको धारण करनेसे शारीरिक तथा मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है।

मलमार्ग एवं पादशुद्धि—नित्यप्रति आवश्यकता, अनिवार्यता और अभ्यासके साथ पैरों तथा मलमार्गोंको जल अथवा मृत्तिकासहित जलसे शुद्ध करनेसे मल दूर होते हैं। पवित्रता आती है तथा अलक्ष्मी और कलिदोषका निवारण होता है।

केश, श्मश्रु, नखकर्तन—पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखोंका कर्तन और प्रसादन मल दूर करनेके लिये करना चाहिये। इससे पुष्टि तथा अविकारभाव एवं व्यक्तित्वमें चमत्कार पैदा होता है।

पादत्राण—पादसुरक्षा तथा पराक्रमवृद्धि करनेके लिये सुविधानुसार यथोचित पादत्राण धारण करने चाहिये। इससे दृष्टिमें वृद्धि एवं आकस्मिक दुर्घटनासे रक्षा होती है।

छत्रधारण—आवश्यकतानुसार ऋतुसुखको ध्यानमें रखकर छत्रधारण भी मानव-शरीरकी रक्षाके लिये आवश्यक होता है। इससे धूल, धूप, वर्षा तथा वायुसे रक्षा होती है।

रात्रिचर्या—दिनभरके व्यस्त कर्मोंको करनेके बाद रात्रिमें सेवनविधिके नियमानुसार आहारका सेवन करना चाहिये और नित्य यथासमय सोनेका क्रम बनाये रखना चाहिये। सुखनिद्राके लिये शयनस्थानकी स्वच्छता, वायुका उचित आवागमन, मच्छर आदिसे सुरक्षा तथा शय्यावस्त्रोंकी स्वच्छता होनी चाहिये।

ऋतुचर्या—शारीरिक स्वास्थ्यके परिपालन तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये आयुर्वेदज्ञोंने नित्य जीवनका क्रम, वातावरणमें होनेवाले परिवर्तनोंका पूर्णत: अध्ययन एवं विवेचन कर व्यावहारिक रूप देनेके लिये वर्षा, ग्रीष्म तथा शीत—इन ऋतुओंके छ: भेद मानकर वैज्ञानिक दृष्टिसे आहार-विहारके नियम ऋतुचर्या-विधानके नामसे विस्तारपूर्वक निरूपित किये हैं। जो चरकसंहिताके सूत्रस्थान ६ में द्रष्टव्य हैं। उनका अनुपालन करना चाहिये।

३. सद्वृत्त

पूर्वमें स्वस्थ-हित और विकारप्रतिबन्धनके लिये आहार, दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्यासम्बन्धी सामान्य नियम प्रस्तुत किये गये हैं। महर्षि चरकके अनुसार मानवका शरीर इन्द्रिय-सत्त्व एवं आत्माका संयोग है। इनमेंसे शरीरके लिये हितकर विषयोंका पूर्वमें वर्णन हुआ है। शेष मानस-क्षेत्र इन्द्रिय, मनके हितकर व्यवहारका विवरण सद्वृत्तके[१] अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। सद्वृत्तका आचरण करनेपर एक साथ दो लाभ प्राप्त होते हैं—आरोग्य और इन्द्रियविजय। जैसे—

(१) देव, गौ, ब्राह्मण, सिद्ध, गुरु, वृद्ध तथा

१. द्रष्टव्य चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ८।

आचार्यकी पूजा करें।

(२) अग्निमें होम करें, प्रशस्त औषधि धारण करें, प्रातः-सायं स्नान करें।

(३) मलायनों तथा पैरोंका सम्यक् शोधन करें, पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखकर्तन करें।

(४) नित्य स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धि धारण करें, केशोंका सुन्दर विन्यास करें।

(५) सिर, कर्ण, घ्राण, पादमें नित्य स्नेहन करें तथा आयुर्वेदिक धूम्रपान करें।

(६) सभीसे पूर्व भाषण करें, प्रसन्नमुख रहें और दुर्गतिप्राप्त लोगोंकी रक्षा करें।

(७) हवन, यज्ञ, दान, बलिदान, अतिथिपूजा तथा पितरोंको पिण्ड-दान करें। समयपर हित, मित और मधुर वाणीका प्रयोग करें।

(८) स्वयंको नियन्त्रित रखें, धर्ममें आस्था रखें। निर्भीक, पवित्र, बुद्धियुक्त कार्यको उत्साहसहित आरम्भ करें। कार्यमें कुशलता, अपराधके प्रति क्षमा, नियमपूर्वक गुरुजनोंकी उपासना करें और छत्र, दण्ड, उपानह आदि धारण करें।

(९) मङ्गलाचरण करके कार्य आरम्भ करें।

(१०) दूषित भूमिका त्याग करें, मात्रामें व्यायाम करें। प्राणिमात्रमें बन्धुत्व रखें, क्रोधीको मनावें, भयभीतको आश्वासन दें, दीनोंको सहयोग दें, सत्यका आचरण करें, दूसरोंके कठोर वचनोंको सहें, प्रतिशोधका त्याग करें, स्वभाव शान्त रखें, राग-द्वेषके कारणोंका नियन्त्रण करें।

(११) असत्य न बोलें, परधन और परस्त्रीकी इच्छा न रखें, शीलका पालन करें, वैर न बढ़ायें, पाप न करें, पापका प्रायश्चित्त करें, स्वगुण एवं दूसरोंके दुर्गुणोंको न कहें, दूसरोंके रहस्योंको न खोलें, अधार्मिक, राजद्रोही, उन्मत्त, पतित, भ्रूणहन्ता, क्षुद्र एवं दुष्टोंकी संगति न करें।

(१२) विकृत यानपर यात्रा न करें, जानुके समान ऊँचे आसनपर न बैठें, असुखशय्यापर शयन न करें, पहाड़ोंकी चोटीपर न चलें, पेड़ोंपर न चढ़ें, नदीके प्रवाहके विरुद्ध न तैरें।

(१३) अग्निसे क्रीडा न करें, छायापर पादाघात न करें, ऊँचे शब्दोंमें न हँसें, शब्दवाले अपानवायुका त्याग न करें, खुले मुख जृम्भा (जंभाई), क्षवथु (छींक) और हास्यका प्रयोग न करें, नाकमें उँगली न डालें, दाँतोंको न घिसें, नखोंको न चबायें, अस्थियोंमें अभिघात न करें, पृथ्वीपर न लिखें, मिट्टीके ढेलेको न फोड़ें, अङ्गोंमें विकृत चेष्टा न करें, देर रात्रिमें मन्दिर आदि स्थानोंपर न जायँ, शून्य गृहमें अकेले प्रवेश न करें, अकेले जंगलमें न जायँ, पापकर्ममें लिप्त स्त्री, मित्र और सेवकोंका विश्वास न करें, श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध न करें, नीचोंकी संगतिमें न जायँ, कुटिल व्यक्तिसे दूर रहें, अनार्यकी संगतिमें न रहें, किसीको भयभीत न करें।

(१४) साहस, अतिबल, प्रजागरण, अतिस्नान, अतिपान, अतिअशन, अत्यशन न करें।

(१५) ऊर्ध्वजानु देरतक न बैठें, सर्पोंका स्पर्श न करें, सींगवाले जानवरोंसे दूर रहें, पूर्वी वायु, आतप तथा ओसका त्याग करें, समूहमें कलह न करें, नियत-चर्याके और आचार्यके बिना यज्ञ आरम्भ न करें, श्रमकी अवस्थामें अग्निसेवन न करें, अग्निके समीप संयत भाषण करें, कटिवस्त्र पहनकर ही यज्ञ करें, केशोंके अग्रभागको न खींचें, यात्रासे पूर्व रत्न, घृत, पूज्य और माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श शरीरके दक्षिण भागसे करें।

(१६) भोजन करनेके पूर्व शुद्ध वस्त्र और रत्न धारण करें, इष्ट देवताका जप करें, अग्निमें हवन, देवताओंको समर्पण, पितरोंको तर्पण और गुरु, अतिथि एवं उपाश्रितोंको यथाशक्य आहारलाभ दें। सुगन्धित स्नान तथा माला धारण करें, प्रक्षालित हस्त-पाद-बदन तथा उत्तराभिमुख हो एवं अशिष्ट, अपवित्र, बुभुक्षित सेवकोंसे परिवर्जित और पवित्र पात्रमें सुसज्जित इष्टदेश, इष्टकाल तथा इष्टभूमिपर जलसिंचनके बाद अभिमन्त्रित कर आहार ग्रहण करें। आहारकी निन्दा न करते हुए प्रसन्नमनसे भोजन ग्रहण करें।

(१७) बासी भोजन न करें तथा मांस और मसालेसे बना भोजन न करें। रात्रिमें दहीका सेवन न करें, सत्तूका सेवन न अकेले करें, न घनरूपमें तथा न रात्रिमें करें। अधारणीय वेगोंके समय कोई कार्य न करें, अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र तथा पूज्य लोगोंके सम्मुख थूक, छींक, पुरीष तथा मूत्रका उत्सर्जन न करें, धार्मिक एवं माङ्गलिक कार्योंके समय थूकना एवं नाक छिनकना वर्जित है।

(१८) स्त्रियोंपर अति विश्वास न करें, उनकी निन्दा न करें, उन्हें गुप्त रहस्य न बतायें, उन्हें बलपूर्वक अपने

अधिकारमें न रखें।

(१९) सज्जन और गुरुओंसे विवाद न करें, अधार्मिक आचरणसे पूजा न करें, समयका सर्वदा विचार करें, रात्रिमें वर्जित स्थानोंपर गमन न करें, संध्याकालमें आहार, अध्ययन, स्त्रीसेवन एवं निद्राका निषेध करें। बाल, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, रोगी और नपुंसक लोगोंसे मैत्री न करें। मद्य, जुआ और वेश्यागमनका परित्याग करें। गुप्त बात सभीको न बतायें, किसीका अपमान न करें, परनिन्दा न करें, अहंकार न करें।

(२०) अधीर न हों, स्वजनोंसे विश्वासघात न करें, सेवकको सेवाका प्रतिफल दें, अकेले सुख न भोगें, दुःखदायी आचार और उपचारोंका अभ्यास न करें, हर किसीपर विश्वास न करें, हर एकपर शंका न करें, सर्वदा विचार ही न करते रहें।

(२१) कार्यके उचित समयको न त्यागें, बिना परीक्षाके अपना मत व्यक्त न करें, विलम्बसे कार्य करनेका त्याग करें, शोकमें न डूबें, कार्य पूर्ण होनेपर अति हर्ष और कार्य असफल होनेपर अति शोक न करें।

(२२) ब्रह्मचर्यका पालन करें तथा ज्ञान, दान, मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा और शान्तिका युक्तिपूर्वक व्यवहार करें।

वर्तमान युगमें काल, अर्थ और कर्मके हीन, मिथ्या और अतियोगोंमें जीवनयापन करनेकी व्यवस्था हमारे सामने विकराल रूपसे उपस्थित है। इसीके परिणामस्वरूप ज्ञान और विज्ञानकी नयी एवं पुरानी चिकित्साप्रणालियोंके अहर्निश कार्य करनेपर भी असाध्य व्याधियाँ तथा रोगप्रतिबन्धनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पा रहा है। आयुर्वेदके स्वस्थ-हित और व्याधिप्रतिबन्धक नियमोंका हर दृष्टिसे विश्लेषण किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि प्रकृतिके अनुरूप जीवनक्रम स्वस्थ जीवनके परिपालनका मूल आधार है। प्रकृतिके बाह्य-स्वरूपसे हमारा वातावरण और आहार उपलब्ध होता है तथा आभ्यन्तर स्वरूपसे शारीरिक भावोंकी साम्यता और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और यही आयुर्वेदमें प्रकृति-सुख-साम्यावस्था 'आरोग्य' कहा जाता है। अतः चरकोक्त वैयक्तिक स्वस्थवृत्तका तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये जीवनयापनकी सरल विधिका अनुपालन किया जाय तो निश्चय ही मनुष्यको स्वस्थ जीवन, दीर्घ जीवन तथा विकारोंका प्रतिबन्धन और सच्चा आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

प्रकृतिके अष्टरूप जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं

(डॉ० आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

जो प्राणी प्रकृतिमें रहता है, उसे प्रकृतिके आठ रूप आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रकृतिके आठ रूप हैं—जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु। प्रकृतिके ये आठों रूप यदि स्वच्छ और निर्मल तथा प्रसन्न हैं तो इनके सहयोगसे यह जीव-जगत् सदा स्वस्थ रहता है। महाकवि कालिदासने अभिज्ञानशाकुन्तलके नान्दीपाठमें प्रकृतिके इन आठ रूपोंका भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंके रूपमें स्मरण किया है—

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् १।१)

कालिदासने प्रकृतिको शिव और प्रकृतिके अष्टरूपोंको शिवकी अष्टमूर्तियाँ माना है। इन अष्टमूर्तियोंका सीधा सम्बन्ध पृथ्वीके जीव-जगत्से है।

(१) जब विधाताने सृष्टिकी रचना की तो उन्होंने सर्वप्रथम जलकी रचना की। अतः कालिदासने सबसे पहले शिवकी जलमयी मूर्तिका स्मरण किया है—'**या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या**'—स्त्रष्टाकी आद्य सृष्टि अर्थात् जल। स्वच्छ और निर्मल जलके सेवनसे शरीर स्वस्थ हो जाता है। जल जीवन है। जलके बिना प्राण-रक्षा नहीं होती। जल अन्तर्गत होकर शरीरके विकारोंको नष्ट कर देता है। जलमें समस्त रोगोंको नष्ट कर देनेवाली औषधियोंको उत्पन्न करनेकी शक्तिका वास है, जिससे समस्त बीज जलग्रहणकर अङ्कुरित हो अपने रूपको वृद्धिङ्गत करते हैं और उनसे प्राणियोंका शरीर आरोग्य प्राप्त करता है।

(२) प्रकृति अर्थात् शिवका द्वितीय रूप 'अग्नि' है,

जिसे कालिदासने '**वहति विधिहुतं या हविः**' के रूपमें स्मरण किया है, जिसका अर्थ है कि जो मूर्ति विधिपूर्वक हवन की गयी हव्य-सामग्रीको ग्रहण करती है अर्थात् अग्नि। अग्नि समस्त प्रकारके रोगोंको अपने प्रभावसे नष्ट कर देती है। इस प्रकार अग्नि प्राणीके बहुतसे रोगों—मन्दाग्नि आदिको नष्ट करके उसके शरीरको आरोग्य प्रदान कर स्वस्थ बनाती है।

(३) प्रकृतिका तृतीय रूप होता—यजमान है। सृष्टिके समस्त कर्म यज्ञ हैं और यज्ञोंका कर्ता यजमान होता है। अतः विधाता सबसे पहला यजमान था, जिसने सृष्टियज्ञ अर्थात् पृथ्वीकी रचना की। वह सृष्टिकर्म अनवरत हो रहा है। इस पृथ्वीका प्रत्येक क्रियाशील प्राणी होता—यजमान है। यजमान स्वकृतयज्ञसे उत्पन्न धूमसे जगत्प्रदूषणको नष्ट कर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करता है।

(४) (५) '**ये द्वे कालं विधत्तः**' कालिदासके इस वाक्यसे—जो दो मूर्तियाँ अर्थात् सूर्य और चन्द्र काल अर्थात् दिन और रात्रिका विधान करते हैं, वे प्रकृति अर्थात् शिवके चतुर्थ और पञ्चम रूप हैं, जिनका इस सृष्टिसे अटूट सम्बन्ध है।

सूर्य समस्त जगत्की आत्मा हैं। ये जगत्का नेत्र और सविता—जनक हैं। इनके बिना हम सब अन्धे हैं। यदि ये न हों तो पृथ्वीपर कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा। इन्हींके प्रतिदिन उदित होनेसे संसारकी गतिविधियाँ चलती हैं। अपनी किरणोंसे ये जीव-जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं। इसीलिये आरोग्यके अभिलाषीको सूर्योपासना करनेका निर्देश शास्त्रोंमें प्राप्त है—'**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**' (मत्स्य पु०)।

चन्द्रमा निशापति और ओषधिपति हैं। ये औषधियोंमें रसोंका सञ्चार करते हैं और उन्हें पुष्टकर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करते हैं। उन पुष्ट औषधियोंका सेवन प्राणी करते हैं, जिससे शरीर नीरोग होता है।

(६) प्रकृतिका छठा रूप आकाश है, जिसे '**श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्**' कहकर कालिदासने शिवकी छठी मूर्ति बताया है। इस आकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड और अनेक गङ्गाएँ समाहित हैं। इसका सर्वाधिक विशाल रूप है। यह समस्त जीव-जगत्को श्रवणशक्ति प्रदान करता है।

(७) प्रकृतिका सप्तम रूप पृथ्वी है, जिसे कालिदासने '**यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति**' अर्थात् जिसे समस्त बीजोंको उत्पन्न करनेवाली कहकर स्मृत किया है। पृथ्वी अन्नादि समस्त बीजोंकी जननी है। अन्नादिसे प्राणियोंकी भूख शान्त होती है और शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। अतः पृथ्वी अपनेसे उत्पन्न अन्न, वनस्पति आदिसे प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करती है।

(८) प्रकृतिका अष्टम रूप वायु है, जिसे कालिदासने '**यया प्राणिनः प्राणवन्तः**' अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी प्राणवाले होते हैं—कहकर शिवकी अष्टमूर्तिके रूपमें स्मृत किया है। वायु सतत बहता है। इसीसे समस्त प्राणी जीवित हैं। यह अन्तरिक्ष-मार्गपर चलता हुआ क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता। यदि यह क्षणभरके लिये भी कहीं रुक जाय तो प्राणियोंका जीवन समाप्त हो जायगा। प्राणियोंमें श्वास-स्पन्दन ही तो जीवन है और वह वायुसे सञ्चालित होता है। अतः वायु हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है।

यह अष्टरूपा प्रकृति तो निरन्तर हमारे कल्याणमें लगी रही है, किंतु आज सारा वातावरण, समस्त परिवेश, अन्न, जल, वायु—सभी कुछ दूषित होता जा रहा है तो फिर रोग बढ़ें, महामारी फैले, प्राकृतिक प्रकोप बढ़ें तो इसमें आश्चर्य कैसा, आजके दूषित समयमें सर्वथा आरोग्य रह पाना बड़ा कठिन हो गया है। प्रकृतिके साथ की जा रही छेड़छाड़को यदि हमने नहीं रोका तो वह दिन दूर नहीं, जब हम सबका सर्वनाश सुनिश्चित होगा।

पहले हमारे समस्त कर्म यज्ञद्वारा प्रकृतिके इन अष्टरूपोंमेंसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदिकी आराधना और उपासनाकी दृष्टिसे होते थे। यज्ञ हवन-होमादिमें निक्षिप्त घृतादि हव्य-सामग्रीसे उत्पन्न सुगन्धित धूमोंसे समस्त पर्यावरणसहित वातावरण शुद्ध तथा सुगन्धित होता रहता था, किंतु आज हमारे कर्म उद्योग तथा व्यापारकी दृष्टिसे हो रहे हैं, जिसके कारण धुआँ उगलते वाहनों और घातक विस्फोटकोंके जहरीले धुएँसे न केवल नगरोंकी अपितु ग्रामीण क्षेत्रोंका वायु भी इतना कलुषित तथा प्रदूषित हो चुका है कि उसे इन फेफड़ोंमें भरना खतरेसे खाली नहीं

है। यह सब हो रहा है और हम सब ऐसा करते रहे तो प्रकृति अर्थात् शिवके इन अष्टरूपोंको विकृत (रुद्र)-रूप धारण करना ही होगा, जिससे विभिन्न घातक रोगोंकी उत्पत्ति अनिवार्य है।

दुस्तोयपानाद्विषमाशनाच्च दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ।
संरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च षड्भिः प्रकारैः प्रभवन्ति रोगाः॥

अर्थात् दूषित जलपान, विषम भोजन, दिनमें शयन, रात्रिमें जागरण, मूत्र और पुरीष (मल)-के रोकनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। प्रथम दो कारणोंको छोड़कर शेष चार कारणोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें व्यक्ति अपने उस आचरणको छोड़कर रोगोंसे मुक्त हो सकता है और आरोग्य प्राप्त कर सकता है। प्रथम दो कारणोंमें दूषित जलको उबालकर शुद्ध किये गये जलपानसे और विषम भोजन त्याग कर सम भोजन करनेसे व्यक्ति नीरोग रह सकता है।

हमारे द्वारा की गयी अनुचित छेड़छाड़के कारण आज न तो जल ही शुद्ध रहा है और न अन्न। दूषित अन्नके खानेसे न जाने कितने विषैले तत्त्वोंको हम उदरस्थ कर शारीरिक विकृतियोंको प्राप्त कर रहे हैं।

हमारे पूर्वज प्रकृतिके इन अष्टरूपोंकी आराधना और उपासना करते थे। ऋग्वेद उपासना-सूक्तोंसे भरा पड़ा है, जिनमें उषःसूक्त, अग्निसूक्त, वरुणसूक्त, सूर्यसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त आदि पठनीय हैं। सूर्यके विषयमें तो सविता, पूषा, मित्र आदि सूक्तोंमें भी वर्णन प्राप्त होता है। वरुण जलके देवता हैं। वरुणसूक्तमें जलके विषयमें वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य आदिपर उपासनासूक्त मिलते हैं, इनमें वायुके विषयमें मरुत्सूक्त है। प्रकृति पूर्वजोंकी पूज्या थी, किंतु हमारे लिये भोग्या है। इसलिये हमारे समस्त कार्य जो विकास, प्रगति और उन्नतिके नामपर हो रहे हैं, वे सब प्रकृति-विरोधी हैं। प्रकृतिका विरोध विनाश और मरणको आमन्त्रित करना है।

अब भी समय है कि हम उन कार्योंसे विरत हों, जिनके करनेसे प्रकृति कलुषित और प्रदूषित हो रही है। जब प्रकृतिके अष्टरूप पूर्ववत् स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न होंगे तो फिर हमें कोई रोग नहीं होगा और हम नीरोग रहेंगे। अतः हम महाकवि कालिदासके शब्दोंमें प्रकृति (शिव)-के उन प्रत्यक्ष अष्टरूपों (मूर्तियों)-की स्तुति करते हैं, वे सबको रक्षा (आरोग्य) प्रदान करें—

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।

स्वस्थ जीवनके लिये ऋतुचर्याका ज्ञान

(वैद्य श्रीअनसूयाप्रसादजी मैठानी, एम्०ए०, आयुर्वेदभास्कर वैद्याचार्य)

रोगकी चिकित्सा करनेकी अपेक्षा रोगको न होने देना ही अधिक श्रेष्ठ है और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि चर्यात्रय अर्थात् ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याके सम्यक् परिपालनसे रोगका निश्चय ही प्रतिरोध होता है।

श्रेष्ठ पुरुष स्वास्थ्यको ही सदा चाहते हैं, अतः वैद्यको चाहिये कि मनुष्य जिस विधिके सेवनसे सदा स्वस्थ रहे उसी विधिका सेवन कराये, आयुर्वेदशास्त्रमें ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याकी जो विधि वर्णित की गयी है, उसका नियमपूर्वक आचरण करनेसे मनुष्य सदा स्वस्थ रह सकता है। ऋतुओंके लक्षणोंसे पूर्णरूपसे अवगत हो जानेके उपरान्त उनके अनुकूल आहार, विहारका सेवन करना चाहिये, अतः ऋतुचर्याके वर्णनसे पूर्व ऋतु-विभागका संक्षिप्त ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रकृतिकृत शीतोष्णादि सम्पूर्ण कालको ऋषियोंने एक वर्षमें संवरण किया है, सूर्य एवं चन्द्रमाकी गति-विभेदसे वर्षके दो विभाग किये गये हैं, जिन्हें 'अयन' कहते हैं, वे अयन दो हैं—१-उत्तरायण और २-दक्षिणायन। उत्तरायणमें रात्रि छोटी तथा दिन बड़े होने एवं सूर्य-रश्मियोंके प्रखर होनेसे चराचरकी शक्तिका शोषण होता है, इसलिये इसे आदानकाल भी कहा गया है और दक्षिणायनमें दिन छोटे तथा रात्रि बड़ी होनेसे चन्द्रमाकी मरीचिकाएँ प्रबल होती हैं, जिनसे प्राणियोंको बल प्राप्त होकर पोषणका कार्य स्वाभाविक रूपसे स्वतः ही होता रहता है।

इन अयनोंमें प्रत्येकके तीन-तीन उपविभाग किये

गये हैं, जिन्हें 'ऋतु' कहते हैं, स्थूल रूपसे उत्तरायणमें—शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म-ऋतुएँ और दक्षिणायनमें—वर्षा (प्रावृट् स्थानभेदसे), शरद् तथा हेमन्त-ऋतुएँ पड़ती हैं, इस भाँति पूरे वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें दोषोंके संचय, प्रकोप तथा उपशमके लिये इन्हीं छः ऋतुओंको मानते हैं।

अब संक्षेपमें प्रत्येक ऋतुका काल, उसका सामान्य लक्षण तथा उस ऋतु-विशेषमें सेवनीय एवं त्याज्य पदार्थोंकी चर्चा करेंगे, इस क्रममें यह बतला देना आवश्यक होगा कि ऋतु-सन्धि-काल, प्रत्येक ऋतुके प्रथम तथा अन्तिम पक्षके दिनोंमें विगत-ऋतुके आहार-विहार, धीरे-धीरे त्यागकर आनेवाली ऋतुके आहार-विहार शनैः-शनैः प्रारम्भ कर देने चाहिये, क्योंकि इनमें आकस्मिक परिवर्तनसे भयंकर रोगोंकी उत्पत्तिकी आशंका रहती है, यथा—**'आसात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।'** दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि यद्यपि सभी ऋतुओंमें ऋतु-अनुकूल पृथक्-पृथक् रसोंके सेवनके लिये कहा गया है और ऋतुके अनुकूल उन रसोंका विशेष रूपसे सेवन करना भी चाहिये, फिर भी मनुष्यको चाहिये कि वह सदा सभी रसों (षड्रसों)-के सेवनका अभ्यास (अविरुद्ध भोजनके) बनाये रखे, किंतु जिस ऋतुमें जो रस-सेवनकी विधि कही गयी है, उसीके अनुकूल उन्हीं रसोंका अधिक सेवन करना चाहिये। यथा—

'नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ'।

वसन्त-ऋतु (चैत्र-वैशाख)

वसन्त-ऋतुमें सभी दिशाएँ रमणीय एवं नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित होती हैं, इस समय शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन मलयाचलसे प्रवाहित होता है, अपनी इस अनुपम सुषमा एवं मनोहरताके कारण ही यह 'ऋतुराज' कहलाता है।

शिशिर-ऋतुमें मधुर, स्निग्ध आहार अधिक सेवनसे और कालस्वभावसे श्लेष्मा अधिकतर संचित हो जाता है तथा वसन्त-ऋतुमें सूर्यकी रश्मियोंद्वारा तप्त होकर कफ जलस्वरूप होकर जठराग्निको नष्ट (मन्द) करके अनेक रोगोंकी उत्पत्ति करता है, अतः उसे शीघ्र जीतना चाहिये। यथा—

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्॥

(अ०हृ० सू० ऋतु० ३। १८)

इसके लिये कफ-निःसारक औषधियोंके द्वारा वमन तथा उर्ध्वांग शुद्ध करें, व्यायाम करना, उबटन लगाना, रूखे, कषैले, कटु, तिक्त, रस, ताम्बूल, कर्पूर, मधुके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करें, श्वेत वस्त्र धारण करें, प्रातः-सायं भ्रमण करें—**'वसन्ते भ्रमणे पथ्ये'** भ्रमणसे कफका ह्रास एवं रक्त-संचार तीव्र गतिसे होता है। सोंठका क्वाथ तथा विजयसार चन्दनादिसे बना जल पीयें, मधुमिश्रित जल तथा नागरमोथासे बना क्वाथ पीयें। यथा—

'शृंगबेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च।'

(अ०हृ० सू० ऋतु० ३। २३)

इस ऋतुमें मधुर, अम्ल, स्निग्ध तथा गरिष्ठ (देरसे पचनेवाले) पदार्थ, शीत द्रव्य, अरवी, कचालू, उरद, ओसमें निद्रा लेना और दधि वर्जित है। इसी प्रकार उल्लेखनीय है जहाँ तरुण दधि प्राणहर होता है, वहीं न तो भोजनके अन्तमें और न रात्रिमें दही खाना चाहिये, यथा—

'न नक्तं दधिभुञ्जीत दध्यन्तं न कदाचन 'तरुणो दधि... प्राणहराणि षट्'।

ग्रीष्म-ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ़)

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी किरणें बहुत ही तीक्ष्ण होती हैं, अतः इनसे प्राणियोंका बल एवं जगत्की आर्द्रताका शोषण होता है, इसके परिणामस्वरूप कफ क्षीण हो जाता है और शरीरमें वायु संचित होकर वृद्धिको प्राप्त होता है, जिससे विविध प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

ग्रीष्म-ऋतुमें जौ, गेहूँ, शालिचावल, मटर, अरहर, कच्चा खीरा, तरबूजा, ककड़ी, पेठा, करेले, बथुवा, चौलाई, घीया, परवल, मधुररसयुक्त लघु, स्निग्ध, शीतल, सुपाच्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, मिस्त्रीयुक्त दूध, खाँड़युक्त दही या मट्ठा, मिस्त्री, मोचरस, चोचमोच, शीतल शरबत आदि स्वास्थ्यप्रद है, शीतल जलसे धुला, केवड़े आदिसे सुगन्धित, खसकी टट्टियोंसे आच्छादित घर, सघन वृक्षोंकी

छाया, प्रातः शीतल जलसे स्नान तथा दिनमें निद्रा—इस ऋतुकी उग्रताको शान्त करते हैं, गुड़के साथ हरीतकीका सेवन करना चाहिये।

अधिक लवणयुक्त, कटु, अम्ल पदार्थ, अधिक व्यायाम, उष्णजलसे स्नान, उपवास, धूपमें पदयात्रा करना, अधिक परिश्रम, तिल-तेल, बैगन, उड़द, सरसों, राईका शाक, गरिष्ठ भोजन, भय, क्रोध, स्त्री-सहवास एवं उग्र वायु-सेवन स्वास्थ्यके लिये हानिप्रद है।

वर्षा-ऋतु (श्रावण-भाद्रपद)

वर्षा-ऋतुमें चारों ओर हरियाली एवं गगन मेघाच्छन्न रहता है, दूषित जल तथा वाष्पयुक्त वायुसे पाचन-प्रणालीपर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, तुषारपूर्ण शीतल वायुसे तथा '**ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्राविट् (वर्षा)-काले प्रकुप्यति**'-से शरीराभ्यन्तरीय वायु पृथ्वीकी दूषित वाष्पसे और जलोंके अम्लपाक होने तथा जल-वायुकी मलिनतासे पित्त तथा अग्निमान्द्य होने और पशुकीटादिके मल-मूत्रादिके संसर्गसे वर्षाका जल मलिन हो जानेसे कफ कुपित हो जाता है। इन दिनों वायु, पित्त तथा कफ आदिके पृथक्-पृथक् अथवा दो-दो या तीनों दोषोंके मिल जानेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वर्षा-ऋतुमें अग्निकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये। अग्निके शान्त हो जानेसे स्वास्थ्यपर बहुत ही घातक परिणाम होता है। अग्निके विकृत होनेपर पुरुष नाना प्रकारके रोगोंसे आक्रान्त होता है। इसलिये सुन्दर स्वास्थ्यके लिये जैसे त्रिस्थूणोंका सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है, उसी भाँति अग्निकी साम्यावस्था बनाये रखना भी अपरिहार्य है, '**समदोषः समाग्निश्च'''' स्वस्थ इत्यभिधीयते**'।

वर्षाकालमें अग्निवर्द्धक पदार्थोंका सेवन, वातनाशक तथा पाचक औषधियोंसे विरेचन लेना, मूँग आदिका जूस, पुराने यव, गेहूँ, शालिचावल, षड्रस, मस्तु (जल दहीका), काला नमक, पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ मिलाकर पीना चाहिये, गरम दुग्ध, करैला, तोरई, नीबू, अंजीर, खजूर, आम, खांड, छाछ, गुड़, परवल, सेंधा नमक मिली हरड़, कुएँ या वर्षाका जल अथवा उबला हुआ जल-सेवन करना चाहिये, अधिक वर्षाके दिनोंमें खट्टे, लवणयुक्त एवं स्निग्ध अन्नका प्रयोग करना चाहिये, शुष्कतामें मधुयुक्त सुपाच्य द्रव्य सेवन करें। सुगन्धित तेल आदि लगाकर स्नान करें, वस्त्रोंको इत्रादिसे सुगन्धित करके धारण करना चाहिये और उन्हें समय-समयपर धूपमें भी रखना चाहिये।

इस ऋतुमें नदीतटका वास, नदीका जल, जलयुक्त सत्तू, दिनमें निद्रा लेना, व्यायाम, अधिक परिश्रम, धूप, रूक्ष द्रव्योंका सेवन, स्त्री-सहवास आदि त्याज्य है। यथा—

उदमन्थं दिवास्वप्नमवश्यायं नदीजलम्॥
व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्।

(च० सू० ६। ३५-३६)

शरद्-ऋतु (आश्विन-कार्तिक)

इस ऋतुमें सूर्यका वर्ण पीला और उष्ण होता है। आकाश निर्मल तथा श्वेत मेघोंसे युक्त होता है। तालाब कमलों एवं हंसोंसे युक्त होकर पृथ्वी—वरुण, सप्तपर्ण, जियापोता, कांस, विजयासारके वृक्षोंसे शोभायमान होती है, तड़ाग, सरिता आदिका जल स्वच्छ होता है, दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त एवं रातको चन्द्र-रश्मियोंसे शीत होकर, अगस्त्य ताराके उदयसे निर्विष हो जाता है जो कि न अभिष्यन्धी और न रूक्ष होकर अमृतके समान कहा गया है। यथा—

तप्त तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः।
समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम्।
नाभिष्यन्धि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्॥

यह ऋतु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसीलिये ऋषियोंने शतायुकी कामना करते हुए सौ शरद्-ऋतुओंके जीनेकी इच्छा व्यक्त की है। यथा—'**जीवेम शरदः शतम्**'।

बरसातमें वातविकारसे बचने-हेतु जब उष्ण खान-पान अधिक किया जाता है, तब पित्त संचित होता रहता है, वह इस ऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तीक्ष्ण होनेसे तुरंत कुपित होकर शरीरमें पित्त-प्रकोपजन्य अनेक प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न कर देता है। यथा—'**वर्षासु चीयते पित्ते शरत्काले प्रकुप्यति**' इसलिये इस ऋतुमें तिक्त द्रव्य, घृत-सेवन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण हितकर है। मधुर तिक्त,

कषाय-रस, शीतल तथा लघु आहार, मीठा दूध, मिस्री, शक्कर, मिस्रीयुक्त हरड़ अथवा आमला-चूर्ण, यव, मूँग, शालिचावल, धनिया, सैंधव लवण, मुनक्का, परवल, कमलनाल, कमलगट्टा, नारियल, नदी अथवा तालाबका जल, कर्पूर, चन्दन आदि हितकर हैं।

शरद्-ऋतु प्राय: उष्ण पित्तकारक तथा मध्यम बल करती है, इसलिये इसमें पैत्तिक पदार्थ छोड़ देने चाहिये, पिप्पली, मिर्च, सौंफ, लहसुन, तक्र, बैगन, खिचड़ी, दही, सरसोंका तेल, मद्य आदि खट्टे, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण पदार्थ, व्यायाम, गुड़, दिनका सोना, अति-मैथुन, रात्रि-जागरण, क्रोध करना, धूपमें चलना—इन आहार-विहारोंको छोड़ देना चाहिये, आश्विनमासकी धूप '**बालाऽर्क**** सद्य: प्राणहर: स्मृत:**' कहा है।

हेमन्त-ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष)

हेमन्त-ऋतुमें सूर्य तुषारसे प्राय: आच्छन्न रहता है, दिशाएँ धूल-धूसरित होती हैं तथा शीतल पवन चलता है। रात्रि अन्य ऋतुओंकी अपेक्षा दीर्घ होती हैं। इस ऋतुमें अधिक शीत वायुके कारण रुकी हुई अग्नि देहके अंदर उसके छिद्रोंसे प्रेरित होकर अपने स्थानमें संचित होकर प्रचण्ड हो जाती है, इसलिये हेमन्तमें वायु तथा अग्निनाशक विधिका उपयोग श्रेष्ठ माना गया है। यथा—'**शीतेऽनिलानलहरो: विधिरिष्यतेऽत:**'। यहाँ यह भी ध्यान देना जरूरी है कि क्षुधाके समय भोजन न मिलनेपर व्यक्तिके शरीरकी अग्नि उसके शरीरके अन्य धातुओंको पचाकर बलका नाश तो करती ही है, स्वयं भी बिना लकड़ीके अग्निकी तरह शान्त हो जाती है। यथा—

'आहारकाले सम्प्राप्ते यो न भुङ्क्ते बुभुक्षित:।
तस्य सीदति कायाग्निर्निरिन्धन इवानल:॥'

इस ऋतुमें मधुर, स्निग्ध, अम्ल तथा लवणयुक्त द्रव्य, गेहूँ, इक्षुरस तथा दुग्धसे बने पदार्थ सेवनीय हैं, सोंठके साथ हरड़का सेवन करना चाहिये।

प्रात:कालका भोजन, ताजा अन्न, गरम तथा नरम वस्त्र, विधिपूर्वक यथावश्यक धूप तथा अग्निका सेवन '**पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम्**' कठोर श्रम, तेल-मालिश तथा केशर, कस्तूरीका लेप हितकर है।

इस ऋतुमें कषैला, कटु, तिक्त, रूक्ष अन्नसे बना भोजन, हलका तथा शीतल भोजन, सत्तू, उड़द, केला, आलू, तोरई, एकाहार, निराहार, शीतल जलमें स्नान, नदीके जलका पान, दिनमें निद्रा, ठंडे स्थानोंमें विहार तथा खुले छप्परोंमें निवास त्याग दें।

शिशिर-ऋतु (माघ-फाल्गुन)

शिशिर-ऋतुके सभी लक्षण एवं चर्या प्राय: हेमन्त-ऋतुके समान ही होते हैं। इस ऋतुमें वायु तथा वर्षासे आकाश आच्छादित रहता है। शीत भी अपेक्षाकृत अधिक रहती है, कहीं-कहीं कोहरा अधिक पड़ता है। भूमि पके हुए घासोंसे पीतवर्ण हो जाती है। पवन तथा कफके विकार उत्पन्न होते हैं।

शिशिर-ऋतुमें शौच तथा स्नान आदि हेतु निर्वात स्थान एवं उष्ण जलका सेवन, समान पिप्पली मिलाकर हरीतकी सेवन करें, सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, पिट्ठीकी बनी पकौड़ी, बढ़िया भोजन, अदरक आदिका अचार, हींग, सैंधव लवण, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचड़ी आदिका सेवन शिशिर-ऋतुमें हितकर होता है।

हेमन्त-ऋतुमें जो पदार्थ वर्ज्य बताये गये हैं, उन्हें इस ऋतुमें भी त्याज्य समझना चाहिये। यथा—'**सर्वं हिमोक्तं शिशिरे**'।

सबकी सेवा करे और सबपर आत्मवत् दृष्टि रखे

आचार्य वाग्भट बड़ी सुन्दर बात बताते हुए कहते हैं कि जिनके पास आजीविकाका कोई साधन नहीं है, ऐसे दीन-हीन, अनाथ, रोगसे ग्रस्त तथा दु:ख-शोकसे पीड़ित प्राणियोंकी यथाशक्ति सेवा करे, सहायता करे, उनके दु:खोंको दूर करनेका प्रयत्न करे और कीट-पतिंगादि तथा चींटी आदि सभी प्राणियोंको अपने समान ही देखे—

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुनुवर्तेत शक्तित:। आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥

स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः-जागरण

(डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवका प्रकृतिके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्राकृतिक नियमोंके साथ समन्वय बनाये रखना मानवको आवश्यक है। स्वास्थ्यकी उत्तमताहेतु प्रात:काल उठना सबसे पहला नियम है। विश्वमें जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब प्रात:काल ही उठते रहे हैं।

सूर्योदयसे पूर्व उठनेकी और करावलोकन, भूमिवन्दना*, मङ्गल-दर्शन†, मातृ-पितृ तथा गुरु-वन्दन और प्रात:स्मरणीय मङ्गल श्लोकोंके पाठ तथा शौच-स्नान आदि कार्योंसे निवृत्त होकर गायत्री आदिकी उपासना करनेकी भारतीय सनातन संस्कृतिकी सुदीर्घ परम्परा रही है। इन सभी कार्योंको नित्य-क्रियाओंका नाम दिया गया है। यदि सूर्योदयसे पूर्व उठकर ये आवश्यक कर्म न कर लिये गये तो फिर आगे उनके लिये अवकाश कहाँ? अत: प्रात:-जागरणसे अपनेको स्वस्थ रखते हुए सत्कर्मोंको अवश्य ही करना चाहिये।

सूर्योदयके पहले चार घड़ीतक (लगभग डेढ़ घंटा पूर्व) 'ब्राह्ममुहूर्त' का समय माना जाता है। उस समय पूर्व दिशामें क्षितिजमें थोड़ी-थोड़ी लालिमा दिखायी देती है तथा दो-चार नक्षत्र भी आकाशमें दिखायी देते रहते हैं, इस समयको अमृत-वेला भी कहा जाता है, यही जागरणका उचित समय है।

प्रकृतिके नियमानुसार पशु-पक्षी आदि संसारके समस्त प्राणी प्रात: ही जगकर इस अमृत-वेलाके वास्तविक आनन्दका अनुभव करते हैं। ऐसी दशामें यदि विश्वका सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव आलस्यवश सोता हुआ प्रकृतिके इस अनमोल उपहारकी अवहेलना कर दे तो उसके लिये कितनी लज्जाकी बात है?

जो लोग सूर्योदयतक सोते रहते हैं, उनकी बुद्धि और इन्द्रियाँ मन्द पड़ जाती हैं। शरीरमें आलस्य भर जाता है तथा उनकी मुखकान्ति हीन हो जाती है। प्रात: विलम्बसे उठनेवाला मनुष्य सदा दरिद्री रहता है। देववाणीमें एक सूक्ति है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, दाँतोंपर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर वचन बोलते हैं तथा जो सूर्यके उदय और अस्तके समय सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहाँतक कि चाहे चक्रपाणि अर्थात् लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् ही क्यों न हों, परंतु उनको भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।

अत: सूर्योदयतक सोते रहनेका हानिकारक स्वभाव छोड़कर प्रात:-जागरणका अभ्यास करना चाहिये। यदि हम दृढ़ संकल्प करें तो ऐसा कौन-सा कार्य है जो पूरा न हो सके?

भगवान् मनु अपनी मानवसंहितामें लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

(४।९२)

---

* शय्यासे उठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वीमाताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अर्थात् 'समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली, पर्वतरूपस्तनोंसे मण्डित भगवान् विष्णुकी पत्नी हे पृथ्वीदेवि! आप मेरे पादस्पर्शको क्षमा करें।'

† प्रात:काल भूमिवन्दनाके अनन्तर गोरोचन, चन्दन, सुवर्ण, मृदंग, दर्पण तथा मणि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन कर गुरु, अग्नि और सूर्यादि देवोंको नमस्कार करना चाहिये—

रोचनं चन्दनं हेमं मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत् प्रातरेव हि॥

अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म-अर्थका चिन्तन करे। प्रथम धर्मका चिन्तन करे यानी अपने मनमें ईश्वरका ध्यान करके यह निश्चय करे कि हमारे हाथसे दिनभर समस्त कार्य धर्मपूर्वक हों। अर्थके चिन्तनसे तात्पर्य यह है कि हम दिनभर उद्योग करके ईमानदारीके साथ धनोपार्जन करें, जिससे स्वयं सुखी रहें तथा परोपकार कर सकें। शरीरके कष्ट और उनके कारणोंका चिन्तन इसलिये करे कि जिससे स्वस्थ रहे, क्योंकि आरोग्यता ही सब धर्मोंका मूल है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

प्रातः उठते ही हाथोंके दर्शन शुभ माने गये हैं। 'आचारप्रदीप' में लिखा है—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

अर्थात् हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, मध्यमें सरस्वती और मूलभागमें ब्रह्माजी निवास करते हैं, अतः प्रातः उठते ही हाथोंका दर्शन करे।

वास्तवमें प्रातःकाल प्रकृतिमें एक अलौकिक रमणीयता आ जाती है, उसका आनन्द हमें तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम प्रकृतिके साथ समन्वय करें। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः-जागरणको ध्यानमें रखकर हम नित्य सूर्योदयसे पूर्व ही उठनेका नियम बना लें और अपने जीवनके प्रत्येक क्षणका उपयोग अच्छे कार्योंमें ही करें।

निद्रा—स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीबृजकुमारजी द्विवेदी एम०डी० (आयु०))

आयुर्वेदमें आरोग्यताको ही सुख कहा गया है। जब शरीरस्थ दोष (वात, पित्त और कफ) समभावमें रहते हैं तो शरीरस्थ अग्नियाँ समभावमें रहती हैं। जिससे धातुओंका निर्माण तथा पोषण भी सम्यक् रूपेण चलता रहता है और मल-निष्क्रमणकी क्रियाएँ भी यथावत् रूपसे होती रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप इन्द्रियोंमें प्रसादत्व (यथोचित रूपसे अपना कार्य करनेमें समर्थता) एवं मनकी प्रसन्नता होती है, जिसे स्वस्थ कहा जाता है। यह सुखका उपलक्षण है।

आयुर्वेदमें तीन उपस्तम्भ बतलाये गये हैं—**'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'** (च०सू० ११।३५)

जब इन तीनों उपस्तम्भोंका युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है तो स्वास्थ्यलाभ होता है। जबतक ये तीन उपस्तम्भ—आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य संस्कारित रहते हैं तबतक बल तथा वर्ण एवं उपचयद्वारा मनुष्य स्वस्थ रहता है—**'एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुःसंस्कारात्।'** (च०सू० ११।३५)

जब इन तीनों उपस्तम्भोंपर सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाता है तो ध्यान इस तरफ आकर्षित होता है कि इन तीनोंमें आहारद्वारा शरीरका मुख्य रूपसे या प्रत्यक्षतः पोषण होता है तथा परिणामतः क्रमिक रूप (Systematic way)-में मन प्रभावित होता है। ब्रह्मचर्यके द्वारा मनमें निर्मलता और सौमनस्यता आती है तथा प्रतिलोम-क्रममें शरीरकी पुष्टि होती है। इन तीनों उपस्तम्भोंमें निद्राका स्थान अति महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि निद्राका सम्बन्ध शरीर तथा मन—इन दोनोंसे होता है—

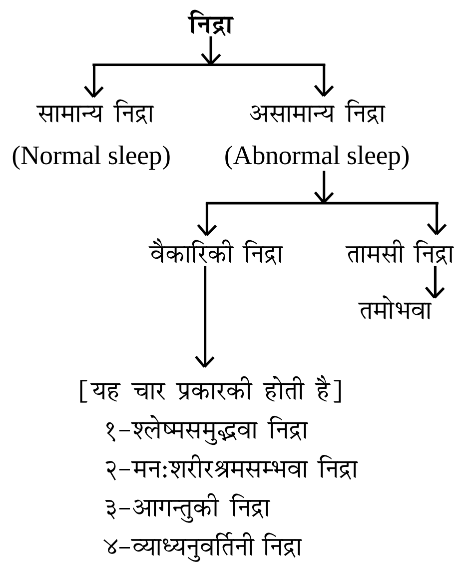
यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

(च० सू० २१।३५)

अर्थात् मन जब कार्य करते-करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी कार्य करनेसे थककर अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्यको निद्रा आती है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्रा वह अवस्था है, जिसमें मन और इन्द्रियाँ—ये दोनों अपने-अपने विषयोंसे मुक्त हो जाती हैं तथा शरीर विश्रामकी अवस्थामें रहता है अथवा मन और इन्द्रियोंके विषयमुक्त होनेके कारण शरीर चेष्टारहित होता है। इस निद्राको आचार्य सुश्रुतने वैष्णवी भी कहा है; क्योंकि जिस प्रकार विष्णु जगत्का धारण-पोषण करते हैं, उसी प्रकार यह निद्रा शरीरका धारण-पोषण करनेवाली होती है। यह निद्रा स्वभावतः सृष्टिके समस्त प्राणियोंको अपने वशमें करनेवाली होती है—**'सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति।'** (सु० शा० ४।३३)

निद्राकी उत्पत्ति तमसे होती है। प्राणियोंका जीवन-व्यापार यथोचितरूपमें चलता रहे, इसके लिये जीवनके घटकों—मन, इन्द्रिय तथा शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है। विश्रामकी अवस्थाविशेषको निद्रा कहा जाता है। इस निद्राको रात्रिस्वभावप्रभवा कहा गया है; क्योंकि यह स्वभावत: रात्रिकालमें मनुष्यको अपने वशमें करती है।

आयुर्वेदमें इस रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राप्रकारोंका भी उल्लेख किया गया है, जो स्वाभाविक निद्रा न होकर अस्वाभाविक निद्रा होती है। अस्वाभाविक या असामान्य (Abnormal) निद्राप्रकारोंकी संख्या चरक तथा सुश्रुतने क्रमश: पाँच और दो बतलायी है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्राको निम्न रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है—



आधुनिक भौतिक वातावरणमें (Materialistic environment) आयुर्वेदोक्त असामान्य निद्राओं (Abnormal sleep)-का सेवन सामान्य निद्रारूपमें किया जा रहा है, अत: इन निद्राओंका उल्लेख संक्षिप्त रूपमें जनसामान्यके ज्ञानार्थ आवश्यक प्रतीत होता है।

सामान्य निद्रा

आयुर्वेदमें रात्रिस्वभावप्रभवाको ही सामान्य निद्रा कहा गया है। अत: मात्र रात्रिकालमें आनेवाली स्वाभाविक निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये; क्योंकि आयुर्वेदमें इस तथ्यको स्पष्टरूपसे उद्घाटित किया गया है—**'रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा'** (च०सू० २१।५०)। अर्थात् रात्रिजागरण रूक्षता उत्पन्न करनेवाला है तथा दिनमें निद्रासेवनसे स्निग्धता बढ़ती है। अत: रात्रिकालमें स्वाभाविक रूपसे आनेवाली निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये।

इस प्रकारकी कतिपय विशिष्ट अवस्थाएँ भी होती हैं, जिनमें दिनमें सेवन की जानेवाली निद्राको भी सामान्य-निद्रा (Normal sleep) समझना चाहिये अथवा निम्न अवस्थाओंमें दिनमें भी निद्रा-सेवन किया जा सकता है—

१. जिस व्यक्तिका शरीर अति अध्ययन या अतिमात्रामें मानसिक कार्य करनेके कारण क्षीण हो गया हो।

२. जिसकी संशोधन-चिकित्सा हुई हो या जिसे वमन अथवा अतिसार हुआ हो या किसी प्रकारसे शरीरमें अप्-धातुका क्षय हुआ हो।

३. जो शारीरिक श्रम करता हो अथवा पैदल यात्रा करता हो।

४. जिसका भोजन यथोचित रूपमें पचा हो।

५. जो व्यक्ति उर:क्षत (फेफड़ेका क्षत), हिक्का, शूल (विभिन्न प्रकारकी वेदना), श्वास-रोगसे ग्रसित हो।

६. जो व्यक्ति ऊँचे स्थान या सवारी आदिसे गिर गया हो या जिसे किसी प्रकारसे चोट लग गयी हो।

७. जो पागल हो।

८. जो व्यक्ति इस प्रकारका कार्य करता हो, जिसमें रात्रिजागरण करना पड़ता हो।

९. जो व्यक्ति विभिन्न प्रकारके क्रोध, भय आदि मनोवेगोंसे युक्त हो।

—इनके अलावा वृद्ध-बालक आदिको भी दिवाशयनका निषेध नहीं है।

यदि उपर्युक्त अवस्थावाला व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसे भी सामान्य निद्रा (Normal sleep)-के अन्तर्गत रखा जाता है। इन अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिवाशयन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि जब वह व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसकी धातुएँ सम हो जाती हैं। शरीरमें बल अर्थात् व्याधि-क्षमत्वकी वृद्धि होती है एवं

क्षीण धातुवाले व्यक्तियोंके शरीरमें धातुओंकी पुष्टि होती है। अतः स्वास्थ्यकी कामना रखनेवाले व्यक्तिको उपर्युक्त अवस्था-विशेष होनेपर ही दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये—

धातुसाम्यं तथा ह्येषां बलं चाप्युपजायते।
श्लेष्मा पुष्णाति चाङ्गानि स्थैर्यं भवति चायुषः॥

(च० सू० २१।४२)

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म-ऋतुमें प्रत्येक व्यक्तिको दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये; क्योंकि ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी प्रखर किरणें शरीरसे जलीयांशका शोषण करती हैं। परिणामतः शरीरमें रूक्षताके कारण वायुका संचय होने लगता है। जब मनुष्य दिनमें सोता है तो कफकी वृद्धि होती है, जिससे शरीरमें संचित वायुका शमन हो जाता है।

दिवानिद्रा-निषेध
(Contra Indications for day sleep)

निम्न अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिनमें कदापि नहीं सोना चाहिये—

(क) मेदस्वी व्यक्ति—जो व्यक्ति अधिक वजनवाले या मोटे हों।

(ख) जो व्यक्ति नित्यप्रति अधिक दूध और घृतका सेवन करते हों।

(ग) जो व्यक्ति कफज प्रकृतिके हों।

(घ) जो कफज व्याधियोंसे ग्रसित हों।

(ङ) जो दूषी (जीर्ण) विषसे पीडित हों या अन्य विषसे पीडित हों।

(च) जो कण्ठगत रोगसे पीडित हों।

निद्राका काल— निद्राहेतु कतिपय विशिष्ट अवस्थाओंको छोड़कर सामान्य अवस्थामें रात्रिकाल ही उचित होता है। सामान्यतः एक वयस्क व्यक्तिको अहोरात्र (चौबीस घंटे)-के चतुर्थांश अर्थात् छः घंटे सोना चाहिये। निद्रा-सेवनहेतु रात्रिको (सूर्यास्तसे सूर्योदयतक) चार भागोंमें विभक्त करना चाहिये। इसमें प्रथम और अन्तिम चतुर्थांशमें सोना नहीं चाहिये। शेषरात्रिके आधे भाग अर्थात् दो मध्यवाले भागमें निद्राका सेवन करना चाहिये, जो लगभग छः घंटेका होता है। ग्रीष्म-ऋतुमें जितना समय अवशिष्ट हो उसे दिनमें सोकर पूरा करना चाहिये। बालकोंके लिये यह नियम नहीं है, उन्हें अत्यधिक कालतक निद्रा-सेवनकी आवश्यकता होती है। अतः उनके निद्राकालका निर्धारण उम्र तथा अवस्थाके अनुसार करना चाहिये।

असामान्य निद्रा (Abnormal sleep)

आयुर्वेदमें रातमें सेवन की जानेवाली रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राको असामान्य [वैकारिकी] निद्रा कहा गया है। यथा—श्लेष्मसमुद्भवा, मनःशरीरश्रमसम्भवा, आगन्तुकी, व्याध्यनुवर्तिनी तथा तमोभवा। तमोभवा या तामसिक निद्रा गम्भीर अवस्थाकी सूचक है, जो मृत्युकालमें आती है। जब मनुष्यमें संज्ञावाही स्रोत तमोगुणसे युक्त हो जाते हैं तो इस स्थितिमें कफादिसे भी स्रोत पूर्ण हो जाते हैं, जिससे मृत्युकारक निद्रा आती है। इसी प्रकार शरीरमें कफकी वृद्धि होनेसे जो निद्रा आती है, उसे असामान्य निद्रा समझना चाहिये तथा इस स्थितिमें निद्राका सेवन नहीं करना चाहिये। जब शरीर तथा मनद्वारा अतिशय कार्य किया जाता है तो थकावटके कारण निद्रा आ जाती है, इस निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। आगन्तुकी निद्रा बिना किसी कारणके अरिष्टरूपमें आती है अर्थात् बिना थकावट, बिना कफ बढ़े या तमोगुणके बढ़े बिना ही किसी विशिष्ट कारणके अभावमें भी निद्रा आ जाती है। यह निद्रा अरिष्टसूचक होती है। कतिपय रोगोंसे ग्रस्त होनेपर निद्रा आ जाती है। इस निद्राको व्याध्यनुवर्तिनी निद्रा कहा जाता है। यह भी एक प्रकारकी असामान्य निद्रा है।

आजकल नींद लानेवाली औषधियोंके सेवनका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। औषधिसेवनोपरान्त आयी निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। इसके अनेक दुष्परिणाम भी सामने आते हैं। विभिन्न उपायोंद्वारा स्वाभाविक नींद लानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिसका विस्तृत वर्णन आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें किया गया है। अतः इस सम्बन्धमें किसी विशेषज्ञ—अनुभवी वैद्यसे परामर्श करना चाहिये।

निद्राका महत्त्व

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता॥

(च० सू० २१।३८)

अर्थात् यदि निद्राका सेवन उचित समयपर किया

जाता है तो वह निद्रा शरीरको आयु और सुखसे युक्त करती है। जिस प्रकार सत्या बुद्धि जब योगी पुरुषके पास आ जाती है तो उसे सिद्धिसे युक्त करती है। इसी प्रकार आजीवन स्वास्थ्यहेतु निद्रा एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण घटक है। यदि यथोचित कालमें स्वाभाविक निद्राका सेवन किया जाता है तो सुख अर्थात् स्वस्थ-दीर्घ जीवनकी प्राप्ति होती है। यहाँ सत्या बुद्धिसे निद्राकी तुलना करके यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सम्यक् रूपसे सेवन की गयी निद्रासे केवल शारीरिक आरोग्यता ही नहीं, वरन् मानसिक आरोग्यताकी भी प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य द्वन्द्व-भावोंसे मुक्त होकर पूर्णरूपेण सदैव स्वस्थ रहता है।

सामान्य और असामान्य (अनुचित)-रूपमें सेवन की गयी निद्राका जीवनपर प्रभाव

आयुर्वेदका लक्ष्य सुखी तथा दीर्घ जीवनकी प्राप्ति है। जीवनमें सुख-दुःखका अनुभव निद्रापर भी निर्भर करता है। आचार्य चरकने स्वाभाविक और यथोचित रूपमें सेवन की गयी निद्रा एवं अस्वाभाविक तथा असम्यक्‌रूपेण सेवन की गयी निद्राका जीवनपर पड़नेवाले प्रभावोंका निम्न रूपमें वर्णन किया है—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥
अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा॥

(च० सू० २१। ३६-३७)

इस प्रकार सम्यक् और असम्यक्‌रूपसे सेवन की गयी निद्राका प्रभाव जीवनपर निम्न रूपमें पड़ता है—

(क) सुख-दुःख—सम्यक् एवं यथोचित रूपमें सेवन की गयी निद्रा सुख प्रदान करती है। स्वाभाविक निद्रा मनुष्यके सुखी होनेकी सूचना भी देती है। इसके विपरीत अकाल या अनुचित रूपमें सेवन की हुई निद्रा अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण बनती है। कतिपय व्यक्ति अत्यधिक निद्रा-सेवनको ही सुख मानते हैं, परंतु वास्तवमें वह दुःखोत्पादक होती है। इससे मनुष्य अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। यदि निद्रा यथोचित रूपमें नहीं आती है, जैसे—अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थिति होती है तो इससे दुःखोत्पत्ति होती है। मानव दुःख तथा बेचैनीका अनुभव करता है। मनको विश्राम नहीं मिलनेके कारण दुःखानुभवके साथ-साथ वह अपना कार्य भी सम्यक्‌रूपेण नहीं कर पाता है।

(ख) पुष्टि-कार्श्य—पुष्टि-कार्श्यका तात्पर्य, यहाँ शरीरके पुष्ट होने तथा दुबला-पतला होनेसे है। जब उचितरूपेण निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरमें आहारादिका पाचन सम्यक्‌रूपसे होता है, जिससे शरीरमें रस-रक्तादिकी पुष्टि निर्बाधरूपसे निरन्तर होती रहती है परिणामतः शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं। असम्यक् या अनुचित रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंका क्षय होता है, जिससे मनुष्य कृशकाय हो जाता है अर्थात् दुबला-पतला हो जाता है। यदि अतिनिद्राका या दिनमें निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरस्थ मार्ग कफवृद्धिके कारण अवरुद्ध हो जाता है, जिससे धातुओंका पोषण यथोचित रूपमें नहीं हो पाता। कफवृद्धिके कारण अग्निमान्द्य हो जाता है, परिणामस्वरूप आमरूप कफकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इन कारणोंसे जब धातुओंकी पुष्टि नहीं होती तो शरीरमें बलका क्षय हो जाता है। यदि रात्रिकालमें निद्राका सेवन नहीं किया जाता है तो शरीरमें रूक्षता बढ़ती है। रूक्ष शोषक होता है, अतः रूक्षता बढ़नेसे शरीरस्थ धातुओंका शोषण हो जाता है और मनुष्य कृशकाय भी हो जाता है।

(ग) बल-अबल—आयुर्वेदमें बलका दो अर्थ ग्रहण किया गया है—पहला शक्ति-ग्रहण तथा दूसरा विशिष्ट व्याधि-क्षमत्व एवं ओज-ग्रहण। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीर और मनमें रोगोंके प्रति लड़नेकी क्षमता बढ़ती है, जिससे मनुष्य स्वस्थ रहता है। यदि निद्राका सेवन सम्यक्-रूपसे नहीं किया जाता है तो शरीर तथा मनमें रोगोंके प्रति रक्षणशक्ति कम हो जाती है, परिणामतः मनुष्य सदैव शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है।

(घ) वृषता-क्लीबता—वृषताका सामान्यतया अर्थ है वीर्यवृद्धि तथा पौरुषशक्तिकी वृद्धि और क्लीबताका अर्थ है नपुंसकता। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंकी पुष्टि होती है, जिससे शुक्रधातुकी वृद्धि होती है एवं

मनुष्यमें पौरुषशक्ति विद्यमान रहती है। सम्यक् निद्रासे मानसिक प्रसन्नता होती है, जिससे मनमें संकल्पशक्ति यथोचित रूपमें विद्यमान रहती है, जो कि सर्वोत्तम वृष्यभाव माना जाता है। इसके विपरीत अनुचित रूपमें या असम्यक्रूपेण सेवन की गयी निद्रासे धातुएँ क्षीण होती हैं, जिससे शुक्रधातुकी पुष्टि नहीं हो पाती। परिणाम यह होता है कि व्यक्तिमें शुक्र और ओजका क्षय होता है, जिससे दौर्मनस्यता होती है। दौर्मनस्यकी स्थितिको आचार्य चरकने सर्वाधिक क्लीबकारक कहा है।

(च) ज्ञान-अज्ञान—ज्ञानाज्ञान भी निद्रापर निर्भर करता है। विषय, इन्द्रिय, मन और आत्मा—इन चारोंके संयोगसे ज्ञान होता है। जब इन्द्रियाँ तथा मन—ये दोनों कार्य करते-करते थक जाते हैं तो निद्रा आती है। विश्रामके बाद वे पुन: अपने-अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार सम्यक्रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे ज्ञान-ग्रहणकी प्रक्रिया निर्बाधरूपमें निरन्तर चलती रहती है, परंतु जब सम्यक्रूपेण निद्रा-सेवन नहीं किया जाता है तो मन और इन्द्रियाँ—दोनों ज्ञान ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते। यदि अतिमात्रामें या दिवाशयन किया जाता है तो कफसे स्रोत पूर्ण हो जाता है, जिससे विषयका सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थितिमें भी इन्द्रियादिको विश्राम नहीं मिल पाता। अत: ज्ञानग्रहण-प्रक्रिया सम्यक्रूपसे नहीं हो पाती है। यदि अनुचित रूपसे या अकाल निद्राका सेवन किया जाता है तो ऐसी निद्रा कालरात्रिकी तरह सुख तथा आयुका नाश कर देती है।

अनिद्राकी स्थितिमें कतिपय आयुर्वेदोक्त चिकित्सा-निर्देश

आजकल अल्पनिद्रा या अनिद्रा एक जटिल समस्या बन गयी है तथा जनसामान्य अंधाधुंध नींद लानेवाली औषधियोंका सेवन करता जा रहा है। भारतवर्षमें भी नींद लानेवाली औषधियोंकी खपत बढ़ती जा रही है, जो कि एक भयावह स्थितिकी सूचना देती है। अत: अनिद्राकी स्थितिमें आयुर्वेदोक्त निम्न निर्देशोंका लाभ उठाया जा सकता है—

(क) अभ्यङ्ग—शरीरपर आयुर्वेदिक औषधीय तेलकी या सामान्य तेलकी मालिश करनेसे वायुका शमन होता है, जिससे स्वाभाविक नींद आती है।

(ख) उत्सादन—शरीरपर विभिन्न औषधियोंका उबटन लगाना चाहिये।

(ग) स्नान—ऋतुके अनुसार जैसे—ग्रीष्म-ऋतुमें शीतल जलसे तथा शीत-ऋतुमें उष्ण जलसे स्नान करनेपर भी नींद आती है।

(घ) नींद लानेवाले आहार—चावलका दहीके साथ सेवन करने तथा दूध, घी आदिका सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है।

(ङ) मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके सुगन्धित प्रसाधनोंका सेवन करने तथा मनके अनुकूल शब्दोंका श्रवण करनेसे नींद आती है।

(च) संवाहन—शरीरको धीरे-धीरे दबानेसे स्वाभाविक नींद आती है।

(छ) नेत्रतर्पणसे नींद आती है।

(ज) सिर तथा मुखपर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंका लेप करने (अश्वगन्धादि चूर्ण, ब्राह्मी आदि निरापद औषधियोंका सेवन इत्यादि)-से नींद आती है।

(झ) सुन्दर, स्वच्छ, पवित्र एवं आध्यात्मिक स्थल जहाँ शान्ति बनी रहती हो, ऐसे स्थानपर पवित्र आसनपर शयन करनेसे शीघ्र ही सुखपूर्वक नींद आती है। शयनसे पूर्व यथासम्भव भगवत्स्मरण करना भूलें नहीं। अच्छे विचारों, अच्छे संकल्पोंके साथ शयन कीजिये, रात्रि सुखकर होगी, प्रभात भी स्फूर्तिमय और चैतन्यतासे परिपूर्ण रहेगा।

सुखका मूल—धर्माचरण

आचार्य वाग्भट बताते हैं कि संसारका कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो दु:ख चाहता हो, सभी सुख चाहते हैं और उनकी चेष्टा भी सुख-प्राप्तिके निमित्त ही होती है, पर वह सुख प्राप्त होता है—धर्माचरणसे, सदाचारके अनुपालनसे। अत: कल्याणकामीको चाहिये कि वह सतत धर्माचरणमें तत्पर रहे—

सुखार्था: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तय:। सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

स्वास्थ्यसूत्र

(संकलन—श्रीराजकुमारजी माखरिया)

१. नित्यप्रति सूर्योदयसे पूर्व सोकर उठें। रात्रिमें अधिक देरतक जागें नहीं।

२. प्रतिदिन नियमित रूपसे व्यायाम करें। तैरनेसे अच्छा व्यायाम हो जाता है। सप्ताहमें कम-से-कम एक बार पूरे शरीरकी मालिश करें।

३. सुबह-शाम टहलना लाभदायक है। नियमित रूपसे टहलनेसे सम्पूर्ण शरीरकी मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं, रक्तसंचार बढ़ता है, शरीरमें चुस्ती-फुर्ती आती है, धमनियोंमें रक्तके थक्के नहीं बनते। हृदयरोग, मधुमेह और ब्लडप्रेशरमें लाभ पहुँचता है।

४. धूप, ताजी हवा, साफ-स्वच्छ पानी और सादा-सात्त्विक भोजन स्वस्थ रहनेके लिये जरूरी है।

५. नित्य योगासन-प्राणायाम करनेसे रोग नहीं होते और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है।

६. स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन निवास करता है, इसलिये शरीरको स्वस्थ रखें। सदाचारी, नीरोगी व्यक्ति सदा सुखी रहता है।

७. तेज रोशनी आँखोंको नुकसान पहुँचाती है।

८. स्नान करते समय पहले सिरपर जल डालना चाहिये, उसके बाद अन्य अंगोंपर। जल न तो अति शीतल हो और न बहुत गर्म। स्नानके बाद किसी मोटे तौलियेसे अच्छी तरह रगड़कर शरीर पोंछना चाहिये।

९. स्वादके लिये नहीं, स्वस्थ रहनेके लिये भोजन करना चाहिये।

१०. भोजन न करनेसे तथा अधिक भोजन करनेसे पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती। भोजनके अयोग, हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोगसे भी पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती है।

११. पानी या दूध तेजीसे न पियें। इन्हें धीरे-धीरे पियें।

१२. भोजनके बाद दाँतोंको अच्छी तरह साफ करें, अन्यथा अन्नकणोंके लगे रहनेसे उनमें सड़न पैदा होगी।

१३. हलका और जल्दी पचे, ऐसा ही भोजन करना चाहिये। सड़ी-गली या बासी चीजें खानेसे रोग होता है। खूब गरम-गरम खानेसे दाँत तथा पाचन-शक्ति दोनोंकी हानि होती है। जरूरतसे अधिक खानेसे अजीर्ण होता है और यही अनेक रोगोंकी जड़ है।

१४. प्रतिदिन चार-पाँच तुलसीकी पत्तियाँ खानेसे ज्वर आदि रोग नहीं होते।

१५. भोजनके पश्चात् दिनमें थोड़ा विश्राम तथा रातमें टहलना अच्छा रहता है।

१६. हमेशा शान्त और प्रसन्न रहें। कम बोलनेकी आदत डालें। जितना जरूरी हो उतना ही बोलें।

१७. चिन्तासे हानि होती है, लेकिन तत्त्वके चिन्तन-मननसे बुद्धिका विकास होता है।

१८. प्रतिदिन आँखोंमें अञ्जन लगानेसे आँखोंकी रोशनी बढ़ती है।

१९. रातमें एक तोला त्रिफलाको एक पाव ठंडे पानीमें भिगो दें, सुबह छानकर उससे आँखें धोयें और बचे हुए जलको पी जायँ।

२०. नित्य मुख धोनेके समय ताजे ठंडे पानीसे आँखोंमें छींटे लगायें। इससे आँखें स्वस्थ रहती हैं।

२१. हफ्ते-दस दिनके अन्तरपर कानोंमें तेलकी कुछ बूँदें डालनी चाहिये।

२२. बिस्तरके गद्दे-तकिये, चादर आदिको समय-समयपर धूपमें डालना चाहिये।

२३. सोनेके स्थानको साफ-सुथरा रखें। नींद आनेपर ही सोना चाहिये। बिस्तरपर पड़े-पड़े नींदकी राह देखना रोगको आमन्त्रित करना है। दिनमें सोनेकी आदत न डालें।

२४. मच्छरोंको दूर करनेका उपाय करें। वे रोगोंको फैलानेमें सहायक होते हैं।

२५. अगरबत्ती, कपूर अथवा चंदनका धुआँ घरमें हर रोज कुछ क्षणोंके लिये करें। इससे घरका वातावरण पवित्र होता है।

२६. श्वास सदा नाकसे और सहज ढंगसे लें। मुँहसे श्वास न लें, इससे आयु कम होती है।

२७. उत्तम विचारोंसे मानसिक सुख तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

२८. अच्छा साहित्य पढ़ें। अश्लील एवं उत्तेजक

साहित्य पढ़नेसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। दूसरोंके गुणोंको अपनायें।

२९. सुबह उठते ही आधा सेरसे एक सेरतक ठंडा पानी पीना चाहिये। यदि पानी ताँबेके बरतनमें रखा हुआ हो तो अधिक लाभप्रद होगा।

३०. कपड़छान किये नमकमें कड़ुआ तेल मिलाकर दाँत और मसूड़ोंको रगड़कर साफ करना चाहिये। इससे दाँत मजबूत होते हैं और पायरियासे भी मुक्ति मिल सकती है।

३१. धूपका सेवन अवश्य करना चाहिये। इससे शरीरको पोषकतत्त्वकी प्राप्ति होती है।

३२. मैदेकी बनी हुई और तली हुई चीजोंसे परहेज करना चाहिये।

३३. हर समय माथा और पेट ठंडा तथा पैर गरम रखना चाहिये।

३४. सप्ताहमें केवल नीबू-पानी पीकर एक दिनका उपवास करें। इससे पाचनशक्ति सशक्त होगी और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। यदि पूरा उपवास न कर सकें तो फल खाकर या फलका रस पीकर उपवास करें।

३५. पचाससे अधिक उम्र होनेपर दिनमें एक ही बार अन्न खायें। बाकी समय दूध और फलपर रहें।

३६. भोजनमें मौसमी फलोंका उपयोग अवश्य करें।

३७. भोजन करते समय और सोते समय किसी प्रकारकी चिन्ता, क्रोध या शोक न करें।

३८. सोनेसे पहले पैरोंको धोकर पोंछ लेने, कोई अच्छी स्वास्थ्यसम्बन्धी पुस्तक पढ़ने और अपने इष्टदेवको स्मरण करते हुए सोनेसे अच्छी नींद आती है।

३९. रात्रिका भोजन सोनेसे तीन घंटे पहले करना चाहिये। भोजनके एक घण्टा बाद फल या दूध लें।

४०. सोते समय मुँह ढककर नहीं सोयें। खिड़कियाँ खोलकर सोयें। सोनेका बिस्तर बहुत मुलायम न हो।

४१. तेल-मालिशके बाद स्नान करना आवश्यक है। तेलसे त्वचाके रोमकूप मैलसे भर जाते हैं, जो लाभके बदले हानि पहुँचाते हैं। यदि स्नान न करनेकी कोई बाध्यता हो तो गुनगुने पानीमें तौलिया भिगोकर अच्छी तरह शरीर पोंछ लें।

४२. सुबह-सुबह हरी दूबपर नंगे पाँव टहलना भी काफी लाभप्रद है। पैरपर दूबके दबावसे तथा पृथ्वीके सम्पर्कसे कई रोगोंकी चिकित्सा स्वत: हो जाती है।

४३. न तो इतना व्यायाम करना चाहिये और न तो इतनी देर टहलना चाहिये कि काफी थकावट आ जाय। टहलने और व्यायामके लिये सूर्योदयका समय ही सबसे उत्तम है।

४४. भोजनसे पहले हाथ-पैर पानीसे धोकर कुल्ला-गरारा करना स्वास्थ्यप्रद होता है।

४५. भोजनके प्रारम्भमें और अन्तमें अधिक मात्रामें जल न पियें। बीचमें दो-तीन घूँट पानी पी लेना चाहिये।

४६. गरम दूध तथा जल पीकर तुरंत ठंडा पानी पीनेसे दाँत कमजोर हो जाते हैं।

४७. शयन करते समय सिर उत्तर या पश्चिममें रखकर नहीं सोना चाहिये। धूपमें सोना हो तो सिर सूर्यकी ओर करके सोयें और धूपमें बैठना हो तो ऐसे बैठें कि पीठपर धूप पड़े।

४८. कपड़ा, बिस्तर, कंघी, ब्रश, तौलिया, जूता-चप्पल आदि वस्तुएँ परिवारके हर व्यक्तिकी अलग-अलग होनी चाहिये। दूसरेकी वस्तु उपयोगमें न लायें।

४९. दिन और रातमें कुल मिलाकर कम-से-कम तीन लीटर पानी पीना चाहिये। इससे शरीरकी अशुद्धि मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाती है तथा रक्तचाप आदिपर नियन्त्रण रहता है।

५०. प्रौढावस्था शुरू होते ही चावल, नमक, घी, तेल, आलू और तली-भुनी चीजें खाना कम कर देना चाहिये।

५१. केला, दूध, दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५२. कटहलके बाद दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५३. शहदके साथ उष्णवीर्य पदार्थोंका सेवन न करें।

५४. दूधके साथ इन वस्तुओंका प्रयोग हानिकारक होता है—नमक, खट्टा फल, दही, तेल, मूली और तोरई।

५५. दूधके साथ इन पदार्थोंका सेवन किया जा सकता है—आँवला, मिस्री, चीनी, परवल, अदरख, सेंधा नमक।

५६. दहीके साथ किसी भी प्रकारका उष्णवीर्य पदार्थ—कटहल, दूध, तेल, केला आदि खानेसे अनेक

रोग उत्पन्न होते हैं। रातको दही खाना निषिद्ध है। शरद् और ग्रीष्म-ऋतुमें दही खानेसे पित्तका प्रकोप होता है। रक्त, पित्त और कफसम्बन्धी रोगोंमें भी दहीका सेवन नहीं करना चाहिये।

५७. दूध और खीरके साथ खिचड़ी नहीं खानी चाहिये।

५८. काँसे और पीतलके बर्तनमें घी रखनेसे विषतुल्य हो जाता है।

५९. शहद और घी समान मात्रामें सेवन करना अत्यन्त हानिकारक होता है।

६०. पढ़ना-लिखना आदि आँखोंके द्वारा होनेवाला कार्य लगातार काफी देरतक न करें। बीच-बीचमें नेत्र बंद करके उनपर उँगलियाँ फेरें और दूरकी किसी वस्तुपर नजर जमायें।

६१. गर्मीमें धूपसे आकर तत्काल स्नान न करें और न तो हाथ-पैर या मुँह ही धोयें। थोड़ा विश्राम करके, पसीना सूख जानेपर जब शरीरका तापमान सामान्य हो जाय, तभी स्नान करें।

६२. देर राततक जागना या सुबह देरतक सोते रहना आँखों और स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं है।

६३. अधिक वसायुक्त आहार, धूम्रपान एवं मांसाहारी भोजन हृदयके लिये नुकसानदेह होते हैं। ये रक्तमें कोलेस्ट्रॉल बढ़ाते हैं।

६४. नियमित व्यायामसे शरीरकी क्षमता बढ़ती है। शरीरमें हानिकारक तत्त्वोंकी मात्रा घटती है। नियमित योग एवं व्यायाम, कम वसायुक्त भोजन तथा नियमित दिनचर्यासे अनेक रोग स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

६५. तम्बाकू, शराब, चरस, अफीम, गाँजा आदि जहरसे भी खतरनाक हैं। नशीले पदार्थोंके सेवनसे धन और स्वास्थ्य दोनोंसे हाथ धोना पड़ता है।

६६. नियमित समयपर प्रातः जागकर शौच जानेवाला, समयपर भोजन करने और सोनेवाला व्यक्ति स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् होता है।

६७. भोजन करनेके बाद लघुशंका अवश्य करनी चाहिये। इससे गुर्दे स्वस्थ रहते हैं।

६८. सही मुद्रामें चलने-बैठनेका अभ्यास करना चाहिये। चलते समय पैरको घिसटते हुए, ठोड़ीको आगे निकालकर या झटका देकर कदम नहीं रखने चाहिये। बैठते समय पीठ सीधी रखकर बैठें।

६९. धूप, वर्षा और शीतकी अतिसे शरीरको बचाना चाहिये। इन तीनोंके अति सेवनसे आयु कम हो जाती है।

७०. अत्यधिक भीड़-भाड़ तथा सीलनयुक्त स्थान स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं होता।

७१. प्रगाढ़ निद्रामें सोये व्यक्तिको नहीं जगाना चाहिये।

७२. सुबह उठते ही यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि आज दिनभर न तो किसीकी निन्दा करूँगा और न ही क्रोध करके किसीको भला-बुरा कहूँगा।

आरोग्य-साधन

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

हिंदू-धर्मकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्यके सर्वाङ्गीण (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) विकासका लक्ष्य रखा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें नीरोग शरीर तथा स्वास्थ्य-रक्षाद्वारा पूर्ण आयु (सौ वर्षकी दीर्घायु)-की प्राप्तिके विभिन्न उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया है।

धर्मका स्वास्थ्य और आरोग्यसे गहरा सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन (जो पवित्र विचारों, शुभ संकल्पोंका आधार है)-का निवास होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रमुख साधन मनुष्य-शरीर ही है—***'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'*** (रा०च०मा० ७।४३।८)

रोगरहित शरीर धर्मका आधार है। दुर्बल स्वास्थ्यवालोंकी इन्द्रियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक चञ्चल देखी जाती हैं; अतः शरीर-शुद्धिपर हमें विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

शरीर पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और हलका रहना चाहिये। इससे चित्त प्रसन्न रहता है, चिन्तन-शक्ति बढ़ती है तथा मन, बुद्धि और प्राण सात्त्विक रहते हैं। नीरोग और स्वस्थ

साधक दैवी सम्पत्तिका विशेष अर्जन कर सकता है। विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले अधिकतर रोगी पाये जाते हैं तथा प्राय: आसुरी सम्पत्तिके निवास-स्थान बने रहते हैं। रोगोंके कारण मनमें भी विकार उत्पन्न होते हैं।

धर्म-प्राप्तिके निमित्त नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण आयु (शतायु) प्राप्त करना मनुष्यमात्रका धर्म है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

(ईशावास्योपनिषद् २)

'संसारमें मनुष्य शुभ (शास्त्रोक्त) कर्म करता हुआ ही (आलसी बनकर नहीं) सौ वर्षोंतक नीरोग जीनेकी इच्छा करे।' उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्यके लिये हमें सक्रिय जीवन बिताना चाहिये।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः। अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥ एतद्वै तत्॥ (कठ० २।२।१)

उस नित्य विज्ञानस्वरूप अजन्मा (आत्मा)-का (शरीररूप) पुर ग्यारह दरवाजोंवाला है। उस (आत्मा)-का ध्यान करनेपर मनुष्य शोक नहीं करता और वह (इस शरीरके रहते ही) मुक्त हो जाता है—विदेह हो जाता है। निश्चय ही यही वह ब्रह्म है।

जो साधक इस मनुष्य-शरीरको इस प्रकार ब्रह्मपुरके रूपमें देख (स्वास्थ्यके नियमोंका पालन)-कर शुद्ध, नीरोग और पवित्र रखता है, क्षुद्र वासनाओं, विषय-विकारोंके वशीभूत न होकर शरीर एवं मनकी भलीभाँति शुद्धि कर लेता है, वह सब प्रकारके सांसारिक शोकसे विमुक्त हो शरीरमें निवास करता हुआ ही इसके सब बन्धनोंसे छूट जाता है—जीवन्मुक्त हो जाता है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः……'

(मुण्डक० ३।२।४)

अर्थात् जो मनुष्य बलहीन (उत्साहहीन) होता है, शारीरिक और मानसिक अस्वास्थ्यके कारण वह प्राय: साधनके मार्गपर भलीभाँति अग्रसर नहीं हो पाता, वह इस आत्माको—समीप-से-समीप, अपने भीतर विराजमान आत्माको पानेमें निराश हुआ रहता है।

संयम—दीर्घ जीवनकी कुंजी

धर्ममें सर्वप्रथम संयमपर विशेष बल दिया गया है। इसलिये हमें चाहिये कि हम अशुभ पदार्थों, अभक्ष्य भोजन एवं दुष्ट विचारोंसे बचें, इन्द्रियोंको वशमें रखें, अतिसे बचें, खान-पान, आहार-विहारके आधिक्यसे बचें और आत्म-संयमद्वारा स्वास्थ्य एवं आरोग्यके मार्गपर बढ़ते रहें।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजुर्वेद ३६।२४)

हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

संयमके साथ ब्रह्मचर्य-पालनपर विशेष जोर दिया गया है। ब्रह्मचर्यद्वारा शारीरिक शक्तियों, यौवन और आरोग्यकी सुरक्षा होती है। कहा गया है—

ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतहिते रतः।
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(संवर्तस्मृति २१६)

'ब्रह्मचर्य-पालन, अल्प भोजन, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर तथा गायत्रीका एक लाख जप करनेवाला धर्मका प्रेमी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

वीर्य नष्ट होनेसे आरोग्य, तेजस्विता, बल और साहस आदिका ह्रास होने लगता है। ब्रह्मचर्यकी सुरक्षाके लिये धर्म-शास्त्रोंने आठ प्रकारके मैथुनसे अत्यन्त सावधान रहनेका संकेत किया है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

(दक्षस्मृति ७।३१-३२)

मनीषी पुरुषोंने मैथुनके ये आठ अङ्ग बतलाये हैं—स्त्रीका स्मरण करना, स्त्रीके अङ्ग-प्रत्यङ्गों एवं कार्यकलापोंका वर्णन करना, स्त्रियोंके साथ हास-परिहासयुक्त क्रीडा करना, लुक-छिपकर अथवा प्रत्यक्ष रूपमें स्त्रियोंकी ओर देखना, एकान्तमें स्त्रियोंके साथ बातचीत करना, स्त्रियोंके प्रति आसक्ति रखते हुए कामक्रीडाकी इच्छा रखना, अप्राप्य स्त्रीको पानेके लिये प्रयत्न करना और प्रत्यक्ष समागममें निरत रहना।

अच्छे स्वास्थ्य, आरोग्य, दीर्घ जीवन, धर्म आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंको इन आठों प्रकारके मैथुनोंसे बचना चाहिये। ये स्वास्थ्यके लिये विष-तुल्य हैं। इनमेंसे एक भी स्वास्थ्य और सौन्दर्यको चौपट करनेमें पर्याप्त है। मनको वासनासे दूर रखकर वीर्यकी रक्षा करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। अतः रोगरहित दीर्घ जीवन तथा आध्यात्मिक अभ्युदयके लिये हमें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

व्यायामका महत्त्व और आवश्यकता

धर्म-शास्त्रोंमें व्यायामको अत्यावश्यक बतलाया गया है। साधु-संन्यासी, ऋषि, साधक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्यमात्रके लिये व्यायाम करना आवश्यक है। हमें नियमित व्यायामद्वारा रक्तशोषण करनेवाले सभी रोगोंके कीटाणुओं और बुरे विचारोंको मनसे सदा दूर रखने तथा ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा अपनी शारीरिक शक्तियोंको दीर्घकालतक अपने शरीरमें बनाये रखनेकी भरपूर चेष्टा करनी चाहिये।

हिंदू-धर्ममें योगका अत्यधिक महत्त्व है। योगासन योगविद्याके अङ्ग हैं। योगासन सभी व्यायाम-पद्धतियोंमें उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अन्य व्यायामोंसे शरीरके कुछ ही भाग विकसित होते हैं, किंतु विभिन्न योगासन करनेपर शरीरका सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम हो जाता है। नियमित रूपसे योगासन करनेसे मानव-शरीर पुष्ट और सुन्दर बनता है, शक्ति और स्फूर्ति आती है तथा शरीरमें क्रियाशीलता बनी रहती है। योगासन मनुष्यके बाहरी और आन्तरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि और सुरक्षामें हेतु हैं। इनसे चञ्चल मनोवृत्तियोंका निरोध होता है।

धर्म-शास्त्रोंने टहलना सबके लिये, विशेषतः वृद्धोंके लिये उपयोगी व्यायाम बतलाया है। याद रहे, प्रातःकालीन प्राणवायु सूर्योदयके पूर्वतक निर्दोष बनी रहती है। अतः धर्ममें रुचि रखनेवालोंको प्रातःकाल जल्दी उठकर, स्नान करके टहलने जाना चाहिये—प्राणवायुका सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है।

धर्म और आहार

जैसा मनमें विचार उत्पन्न होता है, वैसा ही वाणीसे बोला जाता है और वैसा ही काम भी होता है। हमारे मनपर ही सब कुछ निर्भर है और यह मन आहार-शुद्धिपर टिका हुआ है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।' (छान्दोग्य० ७। २६। २)

'आहारशुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्व-शुद्धिसे निश्चल स्मृतिकी प्राप्ति होती है और निश्चल स्मृतिसे सब बन्धनोंसे मुक्ति मिलती है।' अतः मनुष्यको समझ-बूझकर अपना आहार निश्चित करना चाहिये।

धर्माचरण करनेवाले पुरुषको ऐसा सात्त्विक आहार करना चाहिये, जो मधुर, रसयुक्त और स्वादिष्ट अन्नसे शुद्धतापूर्वक बनाया गया हो। तीखे, कसैले, बासी भोजन और मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंका प्रयोग घृणित है।

हमारा आहार ऐसा हो जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बलमें निरन्तर वृद्धि होती रहे। दूध, फल, मेवे, कन्दमूल (गाजर-मूली), साग, भाजी, गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मकई, नारियल, बादाम, किशमिश, अखरोट, नाशपाती, केला, नारंगी, अंगूर एवं दही आदि शुद्ध आहार हैं। इनसे शरीरका पोषण होता है।

हमारे आहारका केवल चौथा अंश ही हमारा पोषण करता है। निषिद्ध अभक्ष्य पदार्थ खाकर मनुष्य मानो अपने दाँतोंसे अपनी 'क़ब्र' खोदता है। तामस पदार्थों (शराब, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कहवा, मांस, तेज मिर्च-मसाले आदि)-से सावधान रहना चाहिये।

यदि अन्नको खिलानेवाला तामसी प्रवृत्तियोंका मनुष्य है तो उसका भी दूषित प्रभाव खानेवालेपर पड़ता है।

गीतामें आहारके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धियुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस पुरुषको प्रिय होता है।'*

* आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (१७।८—१०)

धर्म और उपवास

अधिक भोजन करनेसे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनका नाश होता है, अतः हमारे धर्मग्रन्थोंमें आन्तरिक शुद्धिकी दृष्टिसे प्रति पंद्रह दिनोंमें उपवासका विधान किया गया है। उपवाससे केवल शरीर ही शुद्ध नहीं होता, मनोवृत्तियाँ भी निर्मल बनती हैं।

विषय-वासनाकी निवृत्तिके लिये उपवास महत्त्वपूर्ण साधन है, अतः एकादशीको उपवासका विधान किया गया है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवाससे ज्वर, जुकाम, हैजा, अपच, कुष्ठ, स्वप्नदोष, खाँसी, दमा, सूजन आदि शरीरकी अनेक विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। 'कार्तिक-माहात्म्य' के अनुसार उपवाससे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

सूर्योपासना

सूर्योपासना हमारे स्वास्थ्यके लिये एक अत्यन्त लाभदायक कृत्य है। सूर्यसे हमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन आदिकी प्राप्ति होती है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजुर्वेद ७।४२)—सूर्य स्थावर-जङ्गम पदार्थोंका आत्मा है। अतः सूर्यसे हम प्रार्थना करते हैं—**'जीवेम शरदः शतम्'** (यजुर्वेद ३६।२४)—'हम सौ वर्षोंतक जीवित रहें।' सूर्यकी रश्मियाँ शक्ति और जीवन प्रदान करनेवाली हैं। सूर्य-स्नान करनेसे अनेक रोगों—टायफाइड, यक्ष्मा आदिके कीटाणु नष्ट होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यके शरीर और अन्तःकरणको परिष्कृत कर आत्म-तत्त्व-प्राप्तिके उद्देश्यसे हिंदू-धर्ममें स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्वोंका विधान उपलब्ध होता है। आत्मचेतनाको विकसित करनेके लिये यथासम्भव उपर्युक्त स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंका पालन करना चाहिये। इनसे बाह्य और आभ्यन्तर शौचकी प्राप्ति होती है।

स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीशिवनन्दनप्रसादजी)

इधर जबसे मुझे होश हुआ है, मैं तरह-तरहकी बीमारियोंके नाम सुनता आ रहा हूँ और उनके रोगी भी प्रायः दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। शारीरिक विशेषज्ञ इस अनुसंधानमें बराबर लगे हैं और नयी-नयी ओषधियोंका आविष्कार तेजीसे कर रहे हैं, पर वही पुरानी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है कि 'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' अभी विशेषज्ञ अपने पहले अनुसंधानपर पूरी प्रसन्नता मना भी नहीं सके कि दूसरे रोगकी भयंकरता उनके सामने प्रकट हो गयी और फिर वे उसके अनुसंधानमें लग जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विशेषज्ञ रोग-निवारणार्थ तरह-तरहकी ओषधियोंका आविष्कार एवं रोग-उत्पत्तिके कारण ढूँढ़ रहे हैं, पर मनुष्यको नीरोग बनानेमें वे प्रायः असफल ही हो रहे हैं। वे बराबर इस बातका ढिंढोरा पीटते हैं कि संसारमें तरह-तरहके विषाक्त कीटाणुओंकी उत्पत्ति ही इसके प्रधान कारण हैं और वे उन कीटाणुओंको मारनेमें ही संलग्न हैं, पर असली कीटाणुओंको ढूँढ़ने एवं उनपर अधिकार पानेकी बात सोचते ही नहीं। परिणाम यह हो रहा है कि हम दिनोंदिन विभिन्न नये रोगोंके शिकार होते जा रहे हैं। अतः यदि हम नीरोग होना चाहते हैं और आनेवाली संततिको भी प्रतिभाशाली एवं सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें आन्तरिक कीटाणुओंका विनाश करनेकी अटल प्रतिज्ञा करनी होगी, अब आप कहेंगे कि 'आन्तरिक कीटाणु क्या हैं और उन्हें कैसे मारा जा सकता है?'

आजके वैज्ञानिक इस बातपर विश्वास रखते हैं कि रोगोत्पत्ति बाह्य कीटाणुओं, असंयम, दूषित खान-पान एवं मिश्रित खाद्य पदार्थोंके द्वारा होती है, पर यह उनका निरा भ्रम है। रोगोंकी उत्पत्तिके सहायक ये भले ही हो सकते हैं, पर मूल कारण ये नहीं हैं। रोग-उत्पत्तिके मूल कारण हैं—अन्तःकरणके कलुषित विचार एवं असत्य आचार-व्यवहार। यदि हम अपनी भावनाओंको पवित्र बनाये रखें तो रोग हमसे कोसों दूर रह सकता है। पर इतना कहनेसे आजके लोग यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हैं कि ये विचार सत्य ही हैं। आजका युग भौतिक विज्ञानके पीछे दीवाना है और हर चीजको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखता है तथा जबतक उसमें वैज्ञानिक तौरपर सत्यता नहीं पाता, वह हमारे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे पूर्वज अधिक दूरदर्शी एवं विद्वान् थे और वे अपनी स्थिति पूर्णतः समझते

थे। हमारे पूर्वज शरीरकी बनावट एवं उसके स्नायु-संचालनसे पूर्ण परिचित थे। आजका विज्ञान कितना भी आगे बढ़ जाय, पर वे शारीरिक ज्ञान, आजके वैज्ञानिकोंको प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि ये भौतिकवादी हैं। आजके प्रमुख शरीर-विज्ञानवेत्ता यह बतानेमें पूर्ण असमर्थ हैं कि कौन-सी स्नायुमें विकार आनेसे कौन-कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है? पर आज भी कुछ इने-गिने आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो नाडी देखकर ही शरीर-विकारके कारण एवं उपचार बता सकते हैं, किंतु हजार डिग्री-प्राप्त आधुनिक डॉक्टर पूरे शरीरकी जाँच करनेके पश्चात् भी पूर्णरूपसे रोग और उसकी उत्पत्तिके कारण नहीं बता सकते। अतः कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे पूर्वज शारीरिक विकारोंकी उत्पत्तिके कारण एवं उसके उपचारका पूरा अनुभव रखते थे।

हम लोगोंके यहाँ कहावत प्रचलित है—***साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥*** यह पुरानी कहावत सभी जानते हैं, पर इसकी उपयोगितापर ध्यान नहीं देते। सत्य हमारे शरीर एवं परिवारके रक्षार्थ एक अमोघ यन्त्र है। यदि हम इसका मन, वचन एवं कर्मसे पालन करें तो दैहिक, भौतिक एवं दैविक प्रकोपोंसे बच सकते हैं तथा दूसरोंको भी बचा सकते हैं। सत्य वह कवच है, जिसे धारण करनेसे दुनियाकी सारी आपदाओं एवं विपत्तियोंसे मुक्ति मिल सकती है या ऐसा कहें कि वे आपके पास आनेतकसे डरेंगी।

यदि हम सत्यके विपरीत आचरण करते हैं, अर्थात् असत्यका पालन करते हैं तो सारी विपत्तियोंका आवाहन करते हैं। असत्यद्वारा क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले भाव मनमें उत्पन्न होंगे, जिससे हम दुःख ही भोगेंगे।

यह तो आप आये दिन देखते हैं कि बड़े लोग यानी धनी-मानी व्यक्ति सुखसे रहते हैं, पर उनका शरीर सुखी नहीं रहता। उन्हें तरह-तरहके रोग घेरे रहते हैं। शायद ही कोई ऐसा धनी व्यक्ति हो, जिसके घरमें कोई-न-कोई बड़ी बीमारी न हो और डॉक्टरोंके यहाँ अत्यधिक धन अपव्यय नहीं होता हो। धनहीनोंके घर भी बीमारियाँ आती हैं, पर कम, और आती भी हैं तो थोड़े समयके पश्चात् ही चली भी जाती हैं। यों तो बीमारी हमारे स्वभाव तथा कर्मके अनुसार ही उत्पन्न होती है। अमीरोंके घर बेईमानी तथा इसी तरहकी अनेक स्वार्थपरताके उदाहरण मिलते हैं, पर दीनोंके यहाँ उतनी बेईमानी न होकर अधिकांशतः सचाई और ईमानदारी ही होती है। ग़रीब अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई खाता है और अमीर अपनी विलासिताका जीवन व्यतीत करता है। अब आप कहेंगे कि इससे रोग और उसकी उत्पत्तिका क्या सम्बन्ध है? सम्बन्ध है, विशेषतः महात्मा बुद्ध आदि हमारे पूर्वजोंने जो नियम अपने समाजके लिये बनाये हैं उनसे सिद्ध होता है कि झूठ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध तथा असत्य आदि जितने भी मानस-विकार हैं—इनके सेवनसे ही शरीर, मन एवं बुद्धिमें विकार उत्पन्न होते हैं और उनसे बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है। यदि आप कहेंगे कि नहीं, इससे बीमारी होनेका कोई कारण नहीं तो मैं थोड़ेमें इसका प्रमाण दे रहा हूँ।

मैं होमियोपैथीसे सम्बद्ध हूँ। मैंने अनुभव किया कि रोगकी उत्पत्ति एवं उसके उपचारके साधन भी न्यारे हैं। आप देखेंगे कि उसकी दवाओंका प्रयोग स्वस्थ शरीरपर होता है और स्वस्थ शरीरमें उस दवाके खानेके बाद जो-जो लक्षण पैदा होते हैं, यदि उसी लक्षणके अनुसार कोई रोगी आये तो उसकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरपर दी गयी थी। यदि कोई रोगी अधिक झूठ बोलता है, क्रोध करता है, जिद्दी है, कामी है, अस्वाभाविक जीवन-निर्वाह करता है और व्यसनी है तो उसके अनुसार ही दवा दी जायगी और उससे रोगीको स्वास्थ्य-लाभ होगा।

अब इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त दुर्व्यसनोंके कारण उत्पन्न रोगकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरमें दी गयी थी तथा ऐसे ही लक्षण दिखायी दिये थे।

यदि आप यह सोचें कि इस प्रकारके दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न दुःख केवल हमें ही भोगना पड़ेगा तो ऐसी बात भी नहीं है। आपके बाद आनेवाली संततिको भी दुःख भोगना पड़ेगा। वह कैसे?

गर्भमें संतान होनेके समय यदि उसकी माँ जिद्दी एवं क्रोधी हुई तो बच्चेको अवश्य पेटकी बीमारी होगी और इसी तरह अन्य व्यसनोंके द्वारा भी अलग-अलग रोग होते हैं। इन सबका उदाहरण देनेसे एक लम्बी कहानी बन जायगी। कभी-कभी आप देखते होंगे कि यदि कोई माँ क्रोधावस्थामें बच्चेको अपना दूध पिला देती है तो बच्चा

तत्काल बीमार हो जाता है। इससे स्पष्ट दीखता है कि हमारे स्वभाव एवं विचार ही रोगोत्पत्तिके प्रधान कारण हैं। यदि हम वास्तवमें सुखी एवं नीरोग रहना चाहते हैं तो अपने विचारों, भावों एवं मन:प्रवृत्तियोंमें विशुद्धि, सत्यता एवं कोमलता लाना सीखें। इसीके द्वारा हम सुखी एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

बहुत-से लोगोंका यह विश्वास है कि सुखका साधन केवल धन ही है और इसलिये सब तरहसे धन-उपार्जन करनेमें ही वे अपना भला समझते हैं। फलस्वरूप उन्हें सुख तो मिलता नहीं, अपितु तरह-तरहके झमेले बढ़ जाते हैं और जीवन अशान्तिमय हो जाता है।

यदि मनुष्य किसी असाध्य रोगका शिकार हो गया है या नये-पुराने रोगोंसे पीडित है तो वह दवा आदिका प्रबन्ध तो करे ही, साथ-ही-साथ सत्य-सदाचारके पालन एवं असत्य-असदाचारके परित्यागका व्रत भी ले। आहार-व्यवहार एवं रहन-सहनमें सात्त्विकता लाये। यदि यह भी होना कठिन है तो केवल सत्य-पालन और शुद्ध मनसे ईश्वरका निरन्तर भजन तथा मनन ही करे। रोग कितना भी असाध्य हो, यदि वह सत्यरूपसे ऐसा करेगा तो उसके मनमें शान्ति आयेगी और धीरे-धीरे उसे रोगसे भी मुक्ति मिलेगी। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अटल विश्वास और भक्तिपूर्वक की हुई थोड़ी-सी प्रार्थनासे ही कठिन रोगसे मुक्ति हुई है और करायी गयी है। यदि माँ-बाप या कोई सम्बन्धी किसी रोगके निवारणार्थ प्रार्थना करता है और यदि प्रार्थना सत्यरूपसे की जाती है, तो वह अवश्य सुनी जाती है तथा रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

दूसरोंके लिये प्रार्थना करनेकी रीति हर धर्मावलम्बियोंमें है। हम लोगोंके यहाँ महामृत्युञ्जय, चण्डीपाठ और ग्रह-दोष-निवारणार्थ जप-पाठ कराये जाते हैं, जिससे लाखोंकी संख्यामें लोग लाभ उठाते हैं। लोगोंका विश्वास मन्त्रपरसे उठता जा रहा है। इसका विशेष कारण है कि जिनके द्वारा यह जप-पाठ कराया जाता है, वे ही वास्तवमें अश्रद्धालु, दम्भी और असत्यवादी होते जा रहे हैं। अत: मन्त्रका प्रभाव ही नहीं हो पाता, यदि मनुष्य स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये प्रार्थना करे तो उससे चिरस्थायी लाभ अवश्य होगा।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि 'ईश्वर अन्यायी है या अमुक व्यक्तिकी प्रार्थना नहीं सुनता, अमुकके परिवारको असमय ही उठा लिया यद्यपि उसने लाखों मिन्नतें की थीं।' पर वास्तवमें उसने मिन्नतें की थीं या नहीं, उसकी प्रार्थना सत्य, सात्त्विक एवं मर्मस्पर्शी थी या नहीं, यह कोई नहीं बताता! मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि यदि कोई सत्य आचरण करनेवाला शुद्ध हृदयसे किसीके लिये प्रार्थना करे तो प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। प्रार्थनाका प्रभाव प्रार्थना करनेवालेपर ही निर्भर करता है। उसे स्वयं ज्ञात हो जाता है कि उसकी प्रार्थना सुनी गयी या नहीं—बाबर और हुमायूँकी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभकी बात तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

एक बार मेरी छ: वर्षकी बच्ची टायफाइडसे पीडित हुई और दो-चार दिनोंमें ही उसके मुँहसे तथा पाखानेके साथ खून आना शुरू हो गया। टायफाइडका यह बहुत बड़ा चिन्ताजनक लक्षण है। मैं निरन्तर उसके लिये प्रार्थना करता रहता था; पर हृदयमें भय बना रहता था। एक दिन खून नहीं आया, किंतु फिर भी मेरे मनमें काफ़ी भय बना हुआ था। प्रार्थना करने बैठा तो मन बहुत अशान्त था। मैंने मनमें धैर्य धरकर ईश्वरकी एकाग्रचित्तसे प्रार्थना की और प्रार्थनासे उठा तो मनमें शान्ति एवं साहसका अनुभव हुआ। कुछ देर बाद बच्चीने अधिक मात्रामें खूनका वमन किया। घरके लोग घबरा गये और पुन: डॉक्टरको बुलानेके लिये कहा; यद्यपि एक घंटे पूर्व ही डॉक्टर महोदय उसे देखकर गये थे। मैंने उन्हें बुलाया नहीं और शान्त तथा साहसभरे चित्तसे घरके लोगोंको भी सान्त्वना दी कि ईश्वर सब भला करेंगे। ईश्वरकी कृपा, उस रातके बाद बच्चीको खून आना बंद हो गया और दो-चार दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी।

इससे विश्वास होता है कि प्रार्थनाका प्रभाव अवश्य पड़ता है, किंतु उसमें विश्वास तथा एकाग्रता हो। संदेह, अविश्वास और परीक्षाके लिये की गयी प्रार्थना तो प्रार्थना ही नहीं होती। मेरा तो व्यक्तिगत विचार यही है कि हर व्यक्तिको ईश्वर-प्रार्थनासे किसी भी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

हमारे पूर्वज हजारों वर्षोंतक स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे, जब कि हम सौ वर्ष भी नहीं जी पाते। ऐसा क्यों? इसलिये कि हमारे और उनके रहन-सहन एवं आचार-विचारमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। हम सात्त्विकतासे

बहुत नीचे उतरकर तामसिक भूमिमें आ गये हैं। यदि आज भी हम पूर्ववत् आचरण करने लगें तो पुनः उतने ही समयतक जीनेका दावा कर सकते हैं।

अन्तमें हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे हमें सत्यता एवं सात्त्विकताका जीवन प्रदान करें। साथ ही सभी पाठक बन्धुओंसे भी मेरा निवेदन है कि सभी लोग सत्यता एवं शुद्धताका पालन करें तथा ईश्वर-भजनको अपने दैनिक जीवनमें स्थान दें, जिससे केवल वे ही नहीं, उनकी आनेवाली संतति भी नीरोग और सुखी जीवन व्यतीत करनेवाली हो।

प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्यकी सुरक्षा

(डॉ० श्रीनरेशजी झा शास्त्रचूडामणि)

मानव-जीवनकी सुरक्षा तथा आरोग्यप्राप्तिके लिये हमारे तपःपूत ऋषि-महर्षियोंने अनेक उपाय शास्त्रोंमें निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायामकी साधना भी एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानोंके लिये ही नहीं, अपितु शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्य-लाभपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये भी है। इसकी उपयोगिता तो इसीसे सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातञ्जलादि योग-ग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्रायः समस्त पुराणोंमें अनेकत्र चर्चित हैं। श्रौत-स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्डके प्रारम्भमें प्राणायाम-विधानकी आवश्यकता होती है; क्योंकि दैनिक कृत्य—संध्या-वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदिमें प्रथमतः प्राणायामका ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजनके लिये ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्ति भी होती है।

अतः इस महिमामय शरीर-रक्षक प्राणायामके विषयमें जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानवका पुनीत कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदोंके योगसे बना है—प्राण और आयाम। इन दोनों पदोंमें दीर्घसन्धि करनेपर प्राणायाम शब्दकी निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्दका अर्थ है—अपने शरीरसे उत्पन्न वायु और आयामका अर्थ है—निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायुको रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणोंमें कहा गया है कि—

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥[1]

अर्थात् प्राणवायुका निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातञ्जल-योगदर्शनमें इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है—

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥[2]

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन[3] में स्थित होकर बाह्य वायुका आचमन—श्वास और कोष्ठगत वायुका निःसारण—प्रश्वास, इन दोनोंका गति-विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायामकी सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षणके द्वारा कुंभकमें तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचकमें आये अतिव्याप्ति दोषके निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिये।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणोंमें इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओंमें प्रथमका ही आयाम—निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओंका प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राणमें ही हो। कहीं पाँचोंमें प्राथमिक दो प्राण-अपानवायुका आयाम और कहीं पाँचों वायुओंका एक स्थानमें धारण प्राणायाम माना गया है।

---

१. कूर्म०उ० ११। ३०, वायु० उत्तर० २७। २१, अग्नि० ३७२। ६

२. पातञ्जलयोगदर्शन २। ४९

३. पद्माख्यमासनं कृत्वा रेचकं पूरकं तथा। कुम्भकं च सुखासीनः प्राणायामं त्रिधाऽभ्यसेत्॥

(स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड—५५। ३२)

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो दस प्रकारके वायुका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसोंका प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायामका विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराणोंमें केवल प्राणके ही आयामसे निर्दिष्ट है।[१]

बौधायन धर्मसूत्र-वृत्तिमें श्वास-निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है।[२] इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्द-मार्कण्डेय-पुराणोंमें प्राण-अपान-वायुका निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानोंमें प्राणायामका लक्षण इस प्रकार—

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।[३]
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।[४]
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।[५]

अब आइये—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच वायुओंके निरोधपर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्पमें निर्दिष्ट है—

नासिकापुटमङ्गुल्या पञ्चभिर्वायुरोधनैः।
शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्॥[६]

अर्थात् अंगुलीसे नासिका-पुटको बंदकर पाँच-वायु (प्राणादि)-के निरोधसे धीरे-धीरे निःशब्द होनेको प्राणायाम जानना चाहिये।

इन पाँच प्रधान वायुओंके अतिरिक्त वेदव्यासजीने शिव[७] और अग्निपुराणमें शरीर-संचालन-हेतु पाँच और नवीन वायुओंका समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचोंके अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक पाँच वायु शरीरमें विभिन्न कार्योंके लिये प्रवाहित होते हैं। इनमें धनञ्जय वायु शरीरमें सर्वव्यापी है। इनका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्दपुराणसे भी होती है। वहाँ कहा गया है कि—

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।
गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते॥[८]

अर्थात् सब ओर विचरण करनेवाले प्राणादि वायुका गुरुके द्वारा उपदिष्ट रीतिसे जो एकदेशमें धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोगप्रदीपिकाकारने कहा कि—

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्॥[९]

अर्थात् जबतक शरीरमें प्राणादि वायु स्थित हैं, तभीतक जीवका जीवन है। प्राणवायुके निकल जानेपर मरण सुनिश्चित है, अतः वायुका निरोध करना चाहिये।

इस सम्बन्धमें योगशास्त्रका उद्धरण देते हुए धर्म-विज्ञानमें कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीरकी प्रधान शक्तियाँ होती हैं, वे ही संसारके रक्षक हैं, उन्हें वशमें करनेपर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते हैं। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे दो प्रकारके होते हैं। इन प्राणोंके ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।[१०]

प्राणायामकी उपयोगिता तथा उससे शारीरिक स्वास्थ्य (आरोग्य)-लाभ

शरीरकी रक्षाके लिये जिस प्रकार अन्नकी उपयोगिता है, शरीरस्थ रोगनाशके लिये जैसे औषधियोंका विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्याभ्यन्तर) रोगोंके समूल नाशके लिये प्राणायामका प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है—

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्॥

अर्थात् समुचित प्राणायामद्वारा सभी रोगोंका नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायामके अभ्याससे सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेष रूपसे हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस)-का फूलना, सिर, कान एवं नेत्रमें वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशयकी पुष्टि बृहन्नारदीय पुराणसे भी होती है।

---

१. कूर्म०उ० ११।३०, शिव० वायु० उत्तर० २७।११, अग्नि० ३७२।६
२. बौधायन० द्वि०प्र० ४।६ वृत्तिमें।
३. शाण्डिल्योपनिषद् १।६
४. स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड ५५।२९
५. मार्कण्डेय० ३९।१२
६. गायत्रीपञ्चाङ्ग—विश्वामित्रकल्प, श्लोक १५
७. शिव० वायु० उत्तर० ३७।३५—४०
८. स्कन्द० वैष्णव० ३०।४०
९. हठयोगप्रदीपिका उप० २।३
१०. धर्म-विज्ञान द्वि०ख०पृ० ४६२

यथा—

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः॥

आशय यह है कि मतवाले हाथीके समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु)-को अभ्यासद्वारा धीरे-धीरे जीतना चाहिये, अन्यथा भयंकर महारोग होनेकी सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धतिसे तथा गुरुके द्वारा उपदिष्ट परम्परासे किये गये प्राणायामोंसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

अतः प्राणायाम करनेमें प्राचीन परम्पराका पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्पराके पालनमें स्थान और काल आदिका ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है—

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामे च साधयेत्॥

अर्थात् प्राणायाम-साधनामें उपयुक्त स्थान, काल, परिमित आहार और नाडी-शुद्धि (वात-पित्त-कफकी) आवश्यक है।

रोग-नाशके अतिरिक्त मानसिक संतुलन रखनेमें भी प्राणायामका महान् उपयोग होता है। प्राणायामके निरन्तर अभ्याससे चित्तमें एकाग्रता आती है और इसके लिये पातञ्जलोक्त '**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य**' अर्थात् कोष्ठगत वायुका नासिका (नाक)-के पुटोंद्वारा विशेष प्रयत्नसे प्रच्छर्दन—वमन, विधारण—विशेषरूपसे धारण करके प्राणायाम करे। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्रीमद्भागवतादि मान्य ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धमें भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन कालमें प्राणायामके बलसे ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रिने ऋक्षकुल पर्वतपर सौ वर्षतक प्राणायामके बलसे केवल वायु-पान करते हुए एक पैरपर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमद्भागवत तथा घेरण्ड संहितामें कहा गया है—

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः॥

× × ×

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी॥
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायामसे आकाशगमनकी शक्ति आती है, प्राणायामसे समूल रोग-नाश होता है, शक्ति बढ़ती है, मानसिक संतुलन ठीक रहता है, चित्तमें आनन्दकी प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकारसे नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं, प्राणायामके सेवनसे शरीरमें फेफड़े (फुफ्फुस)-की शक्ति बढ़ती है, रुधिरकी शुद्धि होती है। समस्त नाडी-चक्रोंमें चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायामके सेवनसे स्वस्थ एवं नीरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्तकर मानव-जीवनको सफल बनाया जा सकता है।

मानस-रोग

(पं० श्रीकृष्णगोपालजी शर्मा)

प्रभु जी रोग भयौ है भारी।
काम-वातकी उमग उठत नित, मोह-मूल दुःख झारी॥ १॥
क्रोध-पित्त कौ ताप चढ़ै तन, हो आपे ते भारी।
कफ अपार क्षण बर्ध-लोभ नित, ममता-दाद खुजारी॥ २॥
ईर्ष्या-खाज, विषाद-हर्षयुत, ग्रह (गर) गलगंड अपारी।
पर सुख जरनि, क्षयी, मन कुटिला, कुष्ठ दुष्टता भारी॥ ३॥
डमरुआ-अहं, कपट, मद, दम्भी, मान-नहरुआ चारी।
तृस्ना-उदर, बृद्धि ज्वर-मत्सर, इषना त्रिविध-तिजारी॥ ४॥
औषधि कोटि रोग नहिं नासत, पीड़हिं संतत भारी।
सदगुरु वैद्य सजीवनि दाता, शरण 'गुपाल' तुम्हारी॥ ५॥

स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका योगदान

[आरोग्य-प्राप्ति एवं स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण घटक है। यूँ तो योगका सम्बन्ध मनके स्थैर्य एवं चित्तवृत्तियोंके निरोधके माध्यमसे स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेसे है, तथापि इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें आसन-सिद्धि आवश्यक सोपान है। बिना आसन-सिद्धिके मनका स्थैर्य होना भी अत्यन्त कठिन है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मनकी अवस्थिति होती है और शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये आसनोंका अभ्यास भी अपेक्षित है। आसनोंसे जहाँ न केवल शरीर-सौष्ठव, स्फूर्ति आदि प्राप्त होती है, वहीं श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया नियन्त्रित होती है, मनकी स्थिरता प्राप्त होती है, सम्यक् ध्यान लगता है, शरीरमें रक्त-संचार उचित रीतिसे होता है, शरीरकी मांसपेशियोंमें प्रसार एवं संकुचनकी प्रक्रिया तीव्र होती है, शरीरमें विद्यमान त्रिदोषों (कफ, वात, पित्त)-का संतुलन बना रहता है और रोगोंके निवारणमें सहायता मिलती है। स्वयं आचार्य चरकका कहना है कि योगासनोंके अभ्यास तथा सम्यक् व्यायामसे शरीरमें हलकापन, कार्य करनेकी शक्ति, शरीरमें स्थिरता, दुःख सहन करनेकी क्षमता, शरीरमें बढ़े हुए तथा कुपित दोषोंकी क्षीणता और शरीरकी मन्द अग्नि उद्दीप्त होती है। यथा—

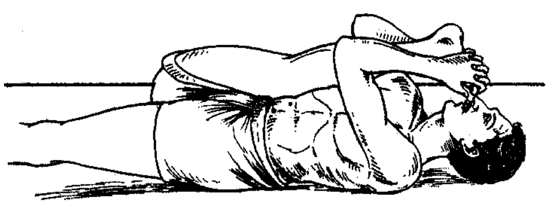
लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं दुःखसहिष्णुता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥

*इसी प्रकार 'हठयोगप्रदीपिका' ने आसनोंके लाभ बताते हुए कहा कि योगासनोंसे शरीर एवं मनकी स्थिरता, आरोग्य और शरीरकी लघुता प्राप्त होती है— '**स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।**'*

*इस प्रकार योगासनों और स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक रोगोंके निदानमें ये सहायक हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ कुछ प्रमुख आसन चित्रोंके साथ दिये जा रहे हैं, इनकी सम्यक् प्रक्रियाका अवज्ञानकर लाभ उठाना चाहिये। — **सं०**]*

(क) चित लेटकर करनेके आसन

१-पादाङ्गुष्ठ-नासाग्र-स्पर्शासन—पृथिवीपर समसूत्रमें पीठके बल सीधा लेट जाय। दृष्टिको नासाग्रमें जमाकर दायें पैरके अँगूठेको पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे,

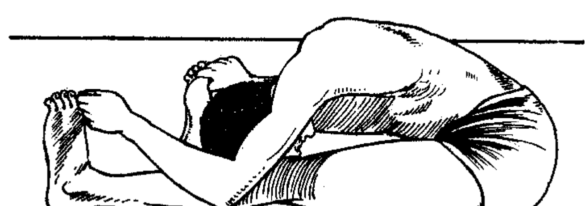


इसी प्रकार पुनः-पुनः करे, मस्तक, बायाँ पैर और नितम्ब पृथिवीपर जमे रहें। इसी प्रकार दायें पैरको फैलाकर बायें पैरके अँगूठेको नासिकाके अग्रभागसे स्पर्श करे। फिर दोनों पैरोंके अँगूठोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे। कई दिनके अभ्यासके पश्चात् अँगूठा नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करने लगेगा।



फल—कमरका दर्द, घुटनेकी पीडा, कन्द-स्थानकी शुद्धि एवं उदर-सम्बन्धी सर्वरोगोंका नाश करता है। यह आसन स्त्रियोंके लिये भी लाभदायक है।

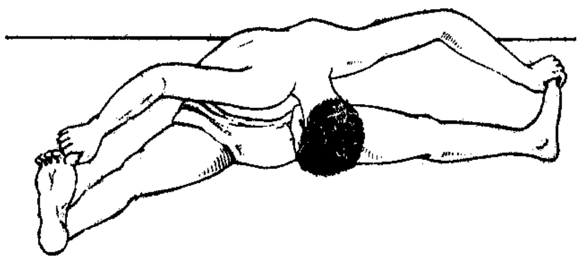
२-पश्चिमोत्तानासन—दोनों पाँवोंको लम्बा सीधा फैलावे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंसे दोनों पैरोंकी अँगुलियोंको खींचकर, शरीरको झुकाकर माथेको घुटनेपर टिका दे, यथाशक्ति वहींपर टिकाये रहे। प्रारम्भमें दस-बीस बार शनैः-शनैः रेचक करते हुए मस्तकको घुटनेपर ले जाय और इसी प्रकार पूरक करते हुए ऊपर उठाता चला जाय।



फल—पाचनशक्तिको बढ़ाना, कोष्ठबद्धता दूर करना, सब स्नायु और कमर तथा पेटकी नस-नाडियोंको शुद्ध एवं निर्मल करना, बढ़ते हुए पेटको पतला करना इत्यादि। इससे मन्दाग्नि, कृमि-विकार तथा वात-विकार आदि रोग दूर होते हैं। इस आसनको कम-से-कम दस मिनटतक

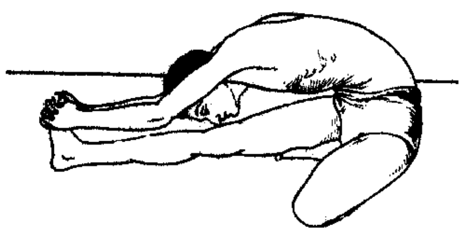
करते रहनेके पश्चात् उचित लाभ प्रतीत होगा।

३-सम्प्रसारण भू-नमनासन—(विस्तृत पाद भू-नमनासन) पैरोंको लम्बा करके यथाशक्ति चौड़ा फैलावे। तत्पश्चात् दोनों पैरोंके अँगूठेको पकड़कर सिरको भूमिमें टिका दे।



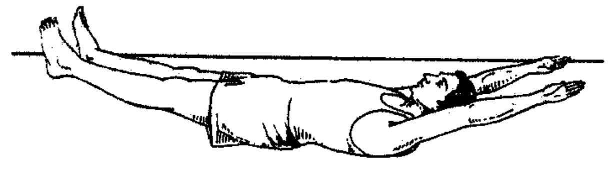
फल—इससे ऊरु और जङ्घाप्रदेश तन जाते हैं। टाँग, कमर, पीठ और पेट निर्दोष होकर वीर्य स्थिर होता है।

४-जानुशिरासन—एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवकी एड़ी गुदा और अण्डकोषके बीचमें लगाकर उसके पाद-तलसे फैले हुए पाँवकी रानको दबावे। पैरकी अँगुलियोंको दोनों हाथोंसे खींचकर धीरे-धीरे आगेको झुकाकर माथेको पसारे हुए घुटनेपर लगा दे। इसी प्रकार दूसरे पाँवको फैलाकर माथेको घुटनेपर लगावे।



फल—इस आसनके सब लाभ पश्चिमोत्तानासनके समान हैं। वीर्य-रक्षा तथा कुण्डलिनी जाग्रत् करनेमें सहायक होना यह इसमें विशेषता है। इसको भी वास्तविक लाभ-प्राप्तिके लिये कम-से-कम दस मिनट करना चाहिये।

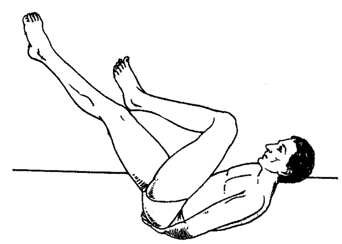
५-हृदयस्तम्भासन—चित लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर तथा दोनों पैरोंको आगेकी ओर फैलावे। फिर पूरक करके जालन्धर-बन्धके साथ दोनों हाथों और दोनों पैरोंको छ:-सात इंचकी ऊँचाईतक धीरे-धीरे उठावे और वहींपर यथाशक्ति ठहरावे। जब श्वास निकालना चाहे, तब पैरों और हाथोंको जमीनपर रखकर धीरे-धीरे रेचक करे।



फल—छाती, हृदय एवं फेफड़ेका मजबूत और शक्तिशाली होना और पेटके सब प्रकारके रोगोंका दूर होना।

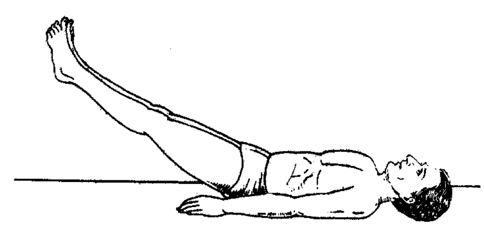
६-उत्तानपादासन—चित लेटकर शरीरके सम्पूर्ण स्नायु ढीले कर दे, पूरक करके धीरे-धीरे दोनों पैरोंको (अँगुलियोंको ऊपरकी ओर खूब ताने हुए) ऊपर उठावे, जितनी देर आरामसे रख सके रखकर पुनः धीरे-धीरे भूमिपर ले जाय और श्वासको धीरे-धीरे रेचक कर दे। प्रथम बार तीस डिग्रीतक, दूसरी बार पैंतालीस डिग्रीतक, तीसरी बार साठ डिग्रीतक पैरोंको उठावे। इस आसनके नौ भेद किये गये हैं—

(क) द्विपाद-चक्रासन—हाथोंके पंजे नितम्बके नीचे रख, चित लेट, एक पैर घुटनेमें मोड़कर घुटनेको पेटके पास लाकर तथा दूसरा पैर किंचित् ऊपर उठाकर बिलकुल सीधा रखे और इस प्रकार पैर चलावे जैसे साइकिलपर बैठकर चलाते हैं।



इससे नितम्ब, कमर, पेट और टाँगें निर्दोष होकर वीर्य शुद्ध, पुष्ट और स्थिर रहता है।

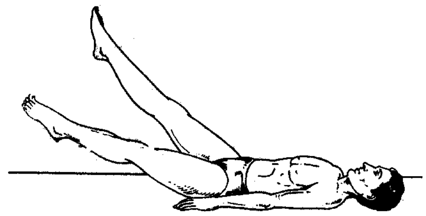
(ख) उत्थित-द्विपादासन—चित लेटकर दोनों पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर जमीनसे बिना लगाये धीरे-धीरे ऊपर-नीचे करे।



इससे पेटके स्नायु मजबूत होते हैं और मलत्याग-

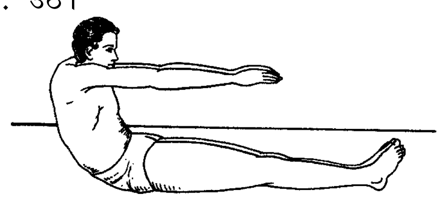
क्रिया ठीक होती है।

(ग) उत्थित-एकैक-पादासन—चित लेटकर, दोनों पैर (एक पैर २० डिग्रीमें और दूसरा पैर ४५ डिग्रीमें) अधरमें रखकर जमीनसे बिना लगाये हुए ऊपर-नीचे करे।



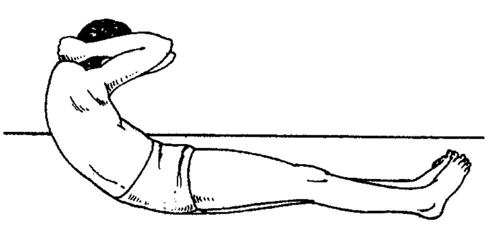
इससे कमरके स्नायु मजबूत होते हैं, मलोत्सर्ग-क्रिया ठीक होती है, वीर्य शुद्ध और स्थिर होता है।

(घ) उत्थित-हस्त-मेरुदण्डासन—हाथ-पैर एक रेखामें सीधे फैलाकर चित लेटे। दोनों हाथ उठाकर पैरोंकी ओर ले जाय। इस प्रकार पुनः-पुनः पीठके बल लेटकर पुनः-पुनः उठे।



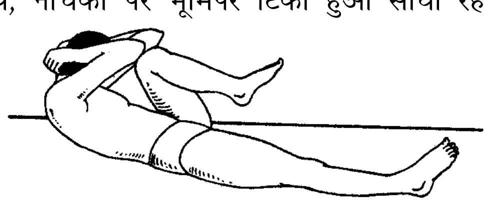
इससे कमर, छाती, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(ङ) शीर्षबद्ध-हस्त-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर, सिरके पीछे हाथ बाँधे, बिना पैर उठाये कमरसे शरीर ऊपर उठावे।



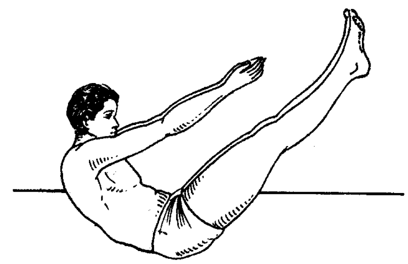
इससे पेट, छाती, गर्दन, पीठ और रीढ़के दोष दूर होते हैं।

(च) जानु-स्पृष्ट-भाल-मेरुदण्डासन—उपर्युक्त आसन करके घुटना मोड़कर बारी-बारी धीरे-धीरे माथेमें लगावे, नीचेका पैर भूमिपर टिका हुआ सीधा रहे।



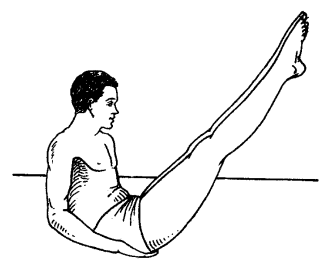
इससे यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), फेफड़े आदि नीरोग होकर पेट, गर्दन, कमर, रीढ़, ऊरु बलवान् और निर्विकार होते हैं।

(छ) उत्थित-हस्तपाद-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर हाथ-पैर दोनों एक साथ ऊपर उठावे और पुनः पूर्ववत् एक रेखामें ले जाये, चार-पाँच बार ऐसा करे।



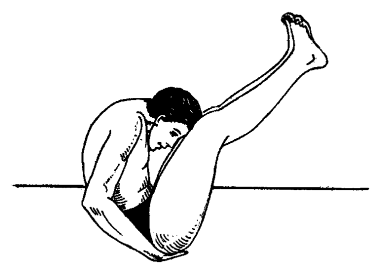
इससे पेट, छाती, कमर और ऊरु निर्दोष होते हैं।

(ज) उत्थित-पाद-मेरुदण्डासन—पैर सामनेको फैलाकर हाथोंकी कोहनियोंके बल धड़को उठावे, अनन्तर पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर ऊपर-नीचे करे।



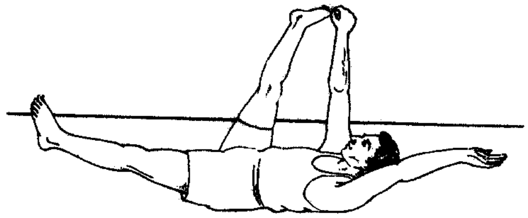
इससे कमर, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(झ) भालस्पृष्ट-द्विजानु-मेरुदण्डासन—ऊपर कहे अनुसार ही करे, किंतु इसके अतिरिक्त सिर दोनों घुटनोंमें लगा दे।

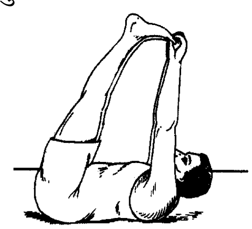


इससे पीठ, छाती, रीढ़, गर्दन और कमरके सब विकार दूर होते हैं।

७-हस्त-पादाङ्गुष्ठासन—चित लेटकर दोनों नासिकासे पूरक करके बायें हाथको कमरके निकट लगाये रखे, दूसरे दायें हाथसे दायें पैरके अँगूठेको पकड़े और समूचे शरीरको जमीनपर सटाये रखे, दायाँ हाथ और पैर ऊपरकी ओर

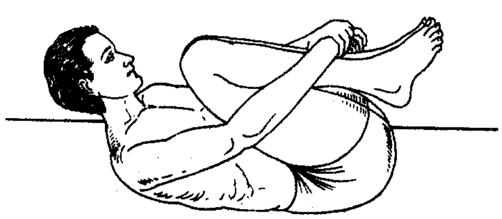


उठाकर तना हुआ रखे। इसी प्रकार दायें हाथको दायीं ओर कमरसे लगाकर बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़कर पूर्ववत् करना चाहिये। फिर दोनों हाथोंसे दोनों पैरोंके अँगूठे पकड़कर उपर्युक्त विधिसे करना चाहिये।



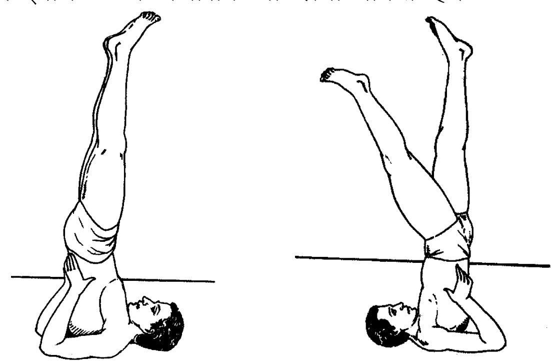
फल—सब प्रकारके पेटके रोगोंका दूर होना, हाथ-पैरोंका रक्तसंचार और बलवृद्धि।

८-पवन-मुक्तासन—चित लेटकर पहले एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवको घुटनेसे मोड़कर पेटपर लगाकर दोनों हाथोंसे अच्छी प्रकार दबाये। फिर इस पाँवको सीधा करके दूसरे पाँवसे भी पेटको खूब इसी प्रकार दबावे। तत्पश्चात् दोनों पाँवोंको इसी प्रकार दोनों हाथोंसे पेटपर दबावे। पूरक करके कुम्भकके साथ करनेमें अधिक लाभ होता है।



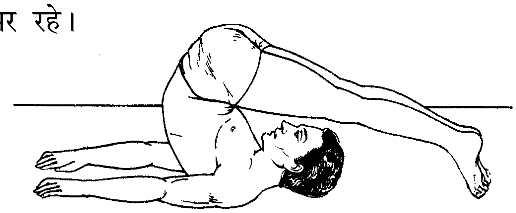
फल—उत्तानपादासनके समान ही इसके सब लाभ हैं। वायुको बाहर निकालनेमें तथा शौचशुद्धिमें विशेषरूपसे सहायक होता है, बिस्तरपर लेटकर भी किया जा सकता है, देरतक कई मिनटतक करते रहनेसे वास्तविक लाभकी प्रतीति होगी।

९-ऊर्ध्व-सर्वाङ्गासन—भूमिपर चित लेटकर दोनों पैरोंको तानकर, धीरे-धीरे कन्धों और सिरके सहारेसे पूर्ण शरीरको ऊपर खड़ा कर दे। आरम्भमें हाथोंके सहारेसे उठावे, कमर और पैर सीधे रहें, दोनों पैरोंके अँगूठे दोनों आँखोंके सामने रहें। मस्तक कमजोर होनेके कारण जो शीर्षासन नहीं कर सकते हैं, उनको इस आसनसे लगभग वही लाभ प्राप्त हो सकते हैं। एक पाँवको आगे और दूसरेको पीछे इत्यादि करनेसे इसके कई प्रकार हो जाते हैं। इसमें ऊर्ध्व-पद्मासन भी लगा सकते हैं।

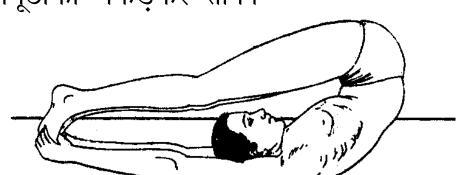


फल—रक्तशुद्धि, भूखकी वृद्धि और पेटके सब विकार दूर होते हैं। सब लाभ शीर्षासनके समान जानने चाहिये।

१०-सर्वाङ्गासन—(हलासन)—चित लेटकर दोनों पावोंको उठाकर, सिरके पीछे जमीनपर इस प्रकार लगावे कि पाँवके अँगूठे और अँगुलियाँ ही जमीनको स्पर्श करें, घुटनोंसहित पाँव सीधे समसूत्रमें रहें, हाथ पीछे भूमिपर रहे।



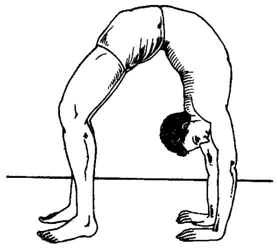
दूसरा प्रकार—दोनों हाथोंको सिरकी ओर ले जाकर पैरके अँगूठोंको पकड़कर ताने।



फल—कोष्ठबद्धता दूर होना, जठराग्निका बढ़ना, आँतोंका बलवान् होना, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत् तथा अन्य सब प्रकारके रोगोंकी निवृत्ति और क्षुधाकी वृद्धि।

११-चक्रासन—चित लेटकर हाथों और पैरोंके पंजे भूमिपर लगाकर कमरका भाग ऊपर उठावे। हाथ-पैरोंके पंजे जितने पास-पास आ सकें, उतने लानेका यत्न करे।

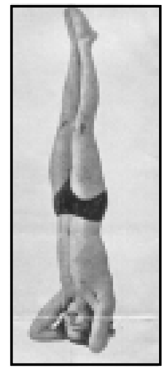
यह आसन खड़ा होकर पीछेसे हाथोंको जमीनपर रखनेसे भी होता है।



फल—कमर और पेटके स्थानको इससे अधिक लाभ पहुँचता है, जिसका पृष्ठवंश सदा आगेकी ओर झुकता है, उसका दोष इस आसनद्वारा विशुद्ध झुकाव होनेसे दूर हो जाता है।

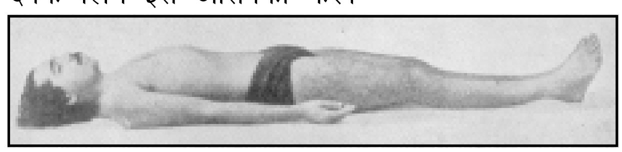
१२-शीर्षासन—जमीनपर एक मुलायम गोल लपेटा हुआ वस्त्र रखकर अपने मस्तकको उसपर रखे। फिर दोनों हाथोंके तलोंको मस्तकके पीछे लगाकर शरीरको उलटा ऊपर उठाकर सीधा खड़ा कर दे, इसे 'शीर्षासन' कहते हैं। प्रारम्भमें किसी दीवाल आदिके सहारे करते हुए अभ्यास बढ़ाना चाहिये। इसमें सिर नीचे और पैर ऊपर होता है, अतः इसे 'विपरीतकरणी मुद्रा' भी कहते हैं। कोई-कोई शीर्षासनको 'कपाली' नामसे भी पुकारते हैं। पैरसे सिरतक सारा शरीर एक लम्बी सीधी-रेखामें होना चाहिये। इस आसनमें पैरोंकी ओरसे रक्तका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर होने लगता है। इसलिये इस आसनको करनेके बाद शवासन करना चाहिये, जिससे रक्तकी गति सम हो जाय। पद्मासनके साथ भी इसे किया जा सकता है।

जिनका मस्तिष्क निर्बल और उष्ण रहता है, नेत्र सदा लाल रहते हैं, जिन्हें उरःक्षत, क्षय, हृदयकी गतिवृद्धि, श्वासरोगका तीक्ष्ण प्रवाह, वमन, हिक्का, उन्माद आदि रोग हों, उनके लिये यह आसन हानिकर है, अतः उन्हें नहीं करना चाहिये। भोजनके बाद या रात्रिमें इसका अभ्यास करना हानिकर होता है।



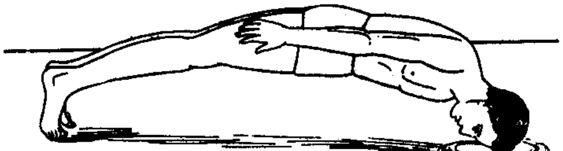
फल—इस आसनका अभ्यास करनेसे वात, पित्त और कफदोषसे उत्पन्न सब रोग, ज्वर, कास, श्वास, उदररोग, कटिवात, अर्धाङ्ग, ऊरुस्तम्भ, वृषणवृद्धि, नाडीव्रण, भगंदर, कुष्ठ, पाण्डु, कामला, प्रमेह तथा अन्त्रवृद्धि आदि रोग दूर हो जाते हैं। शारीरिक निर्बलता दूर हो जाती है और शरीर नीरोग और ऊर्जस्वी हो उठता है।

१३-शवासन (विश्रामासन)—शरीरके सब अङ्गोंको ढीला करके मुर्देके समान लेट जाय। शवके समान निश्चेष्ट लेटे रहनेसे इसे 'शवासन' कहते हैं। सब आसनोंके पश्चात् थकान दूर करने और चित्तको विश्राम देनेके लिये इस आसनको करे।



(ख) पेटके बल लेटकर करनेके आसन

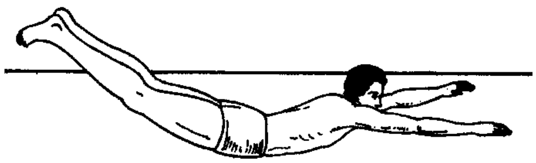
१४-मस्तक-पादाङ्गुष्ठासन—पेटके बल लेटकर, सारे शरीरको मस्तक और पैरोंके अँगूठेके बलपर उठाकर कमानके सदृश शरीरको बना दे। शरीरको उठाते हुए पूरक, ठहराते हुए कुम्भक और उतारते हुए रेचक करे।



फल—मस्तक, छाती, पैर, पेटकी आँतें तथा सम्पूर्ण शरीरकी नाडियाँ शुद्ध, नीरोग और बलवान् होती हैं। पृष्ठवंश एवं मेरुदण्डके लिये विशेष लाभ पहुँचाता है।

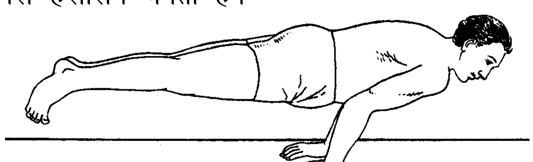
१५-नाभ्यासन—पेटके बल समसूत्रमें लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर आगे दो हाथकी दूरीपर एक-दूसरे हाथसे अच्छी तरह फैलावे, दोनों पैरोंको भी दो हाथकी दूरीपर ले जाकर फैलावे। फिर पूरक करके केवल नाभिपर समूचे शरीरको उठावे। पैरों और हाथोंको एक या डेढ़

हाथकी ऊँचाईपर ले जाय, सिर और छातीको आगेकी ओर उठाये रहे। जब श्वास बाहर निकलना चाहे, तब हाथों और पैरोंको जमीनपर रखकर रेचक करे।



फल—नाभिकी शक्तिका विकास होना, मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला तथा अन्य पेटके रोगोंका तथा वीर्यदोषका दूर होना।

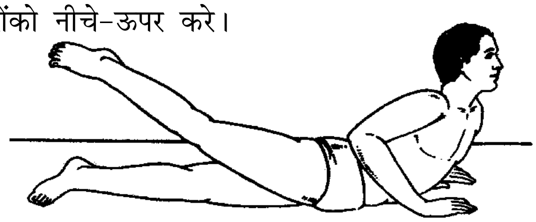
१६-मयूरासन—दोनों हाथोंको मेज अथवा भूमिपर जमाकर, दोनों हाथोंकी कोहनियाँ नाभिस्थानके दोनों पार्श्वसे लगाकर सारे शरीरको उठाये रहे। पाँव जमीनपर लगे रहनेसे हंसासन बनता है।



फल—जठराग्निका प्रदीप्त होना, भूख लगना, वात-पित्तादि दोषोंको तथा पेटके रोगों गुल्म-कब्जादिको दूर करना और शरीरको नीरोग रखना। वस्ति तथा एनिमाके पश्चात् इसके करनेसे पानी तथा आँव जो पेटमें रह जाते हैं, वह निकल जाते हैं, मेरुदण्ड सीधा होता है।

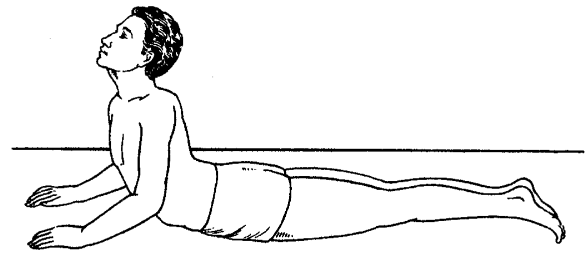
१७-भुजङ्गासन (सर्पासन)—भुजङ्गासनके निम्न तीन भेद किये गये हैं—

(क) उत्थितैकपाद-भुजङ्गासन—पेटके बल लेटकर हाथ छातीके दोनों ओरसे कोहनियोंमेंसे घुमाकर भूमिपर टिकावे, भुजङ्गके सदृश छाती ऊपरको उठाकर दृष्टि सामने रखे, एक पैर भूमिपर टिका रहे, दूसरा पैर घुटनेको बिना मोड़े जितना जा सके ऊपर उठावे। इसी प्रकार बारी-बारीसे पैरोंको नीचे-ऊपर करे।



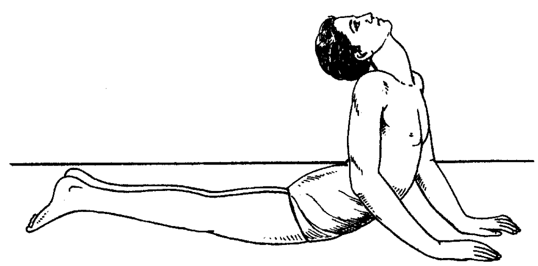
फल—इससे कटि-दोष, यकृत्, प्लीहा आदिके विकार दूर होते हैं।

(ख) भुजङ्गासन—पैरोंके पंजे उलटी ओरसे भूमिपर टिकाकर हाथोंको भी भूमिपर किञ्चित् टेढ़े रखकर धड़को कमरसे उठाकर भुजङ्गाकार बनावे।



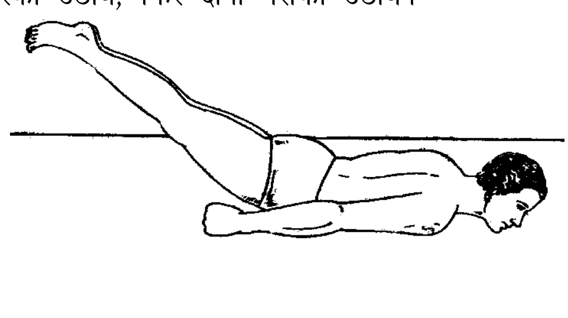
फल—पेट, छाती, कमर, ऊरु, मेरुदण्ड आदिके सब विकार दूर होते हैं।

(ग) सरलहस्त-भुजङ्गासन—हाथोंको भूमिपर सीधा रखकर पैरोंको पीछेकी ओर ले जाकर दोनों हाथोंके बीच कमर आ जाय। इस रीतिसे कमर झुकाकर छाती और गर्दनको भरसक ऊपर उठाकर सीधे आकाशकी ओर देखे। इससे पेटकी चरबी निकल जाती है।



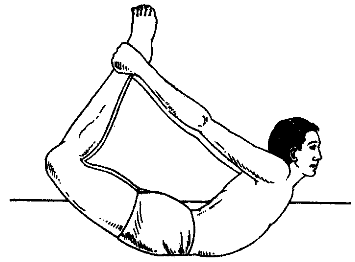
फल—पेट, कमर और गर्दनके सब विकार दूर होते हैं।

१८-शलभासन—शलभ टिड्डीको कहते हैं। पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको मुट्ठी बाँधकर कमरके पास लगावे, तत्पश्चात् धीरे-धीरे पूरक करके छाती तथा सिरको जमीनमें लगाये हुए हाथोंके बल एक पैरको यथाशक्ति एक-डेढ़ हाथकी ऊँचाईपर ले जाकर ठहराये रहे। जब श्वास निकलना चाहे, तब धीरे-धीरे पैरको जमीनपर रखकर शनैः-शनैः रेचक करे। इसी प्रकार दूसरे पैरको उठावे, फिर दोनों पैरोंको उठावे।



फल—जंघा, पेट, बाहु आदि भागोंको लाभ पहुँचाता है। पेटकी आँतें मजबूत होती हैं और सब प्रकारके उदर-विकार दूर होते हैं।

१९-धनुरासन—पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंको पीठकी ओर करके दोनों पैरोंको पकड़ लेवे और शरीरको वक्र-भावसे रखे। कहीं-कहीं इस आसनको वज्रासनकी भाँति एड़ियोंपर बैठकर पीछेकी ओर झुककर करना बतलाया है।



फल—कोष्ठबद्धादि उदरके सब विकारोंका दूर होना, भूख तथा जठराग्निका प्रदीप्त होना।

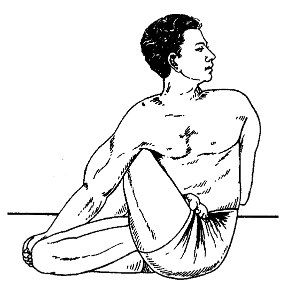
(ग) बैठकर करनेके आसन

२०-मत्स्येन्द्रासन—इसको पाँच भागोंमें विभक्त करनेमें सुगमता होगी—

(क) बायें पाँवका पंजा दायें पाँवके मूलमें इस प्रकार रखे कि उसकी एड़ी टूँडीमें लगे, अँगुलियाँ पाल्थीके बाहर न हों।

(ख) दायाँ पाँव बायें घुटनेके पास, पंजा भूमिपर लगाकर रखे।





(ग) बायाँ हाथ दायें घुटनेके बाहरसे चित डालकर उसकी चुटकीमें दायें पाँवका अँगूठा पकड़े, उस दायें पाँवके पंजेको बाहर सटाकर रखे।

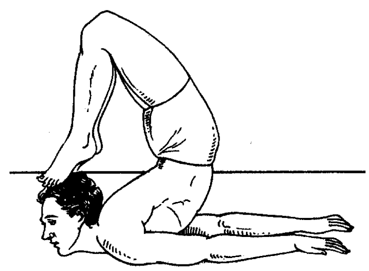
(घ) दायाँ हाथ पीठकी ओरसे फिराकर उससे बायें पैरकी जंघा पकड़ ले।

(ङ) मुख तथा छाती पीछेकी ओर फिराकर ताने तथा नासाग्रमें दृष्टि रखे। इसी प्रकार दूसरी ओरसे भी करे।

फल—पीठ, पेट, पाँव, गला, बाहु, कमर, नाभिके निचले भाग तथा छातीके स्नायुओंका अच्छा खिंचाव होता है। जठराग्नि प्रदीप्त और पेटके सब रोग—आमवात, परिणामशूल तथा आँतोंके सब रोग नष्ट होते हैं। अतिसार, ग्रहणी, रक्तविकार, कृमि, श्वास, कास, वातरोग आदि दूर होकर स्वास्थ्य-लाभ होता है।

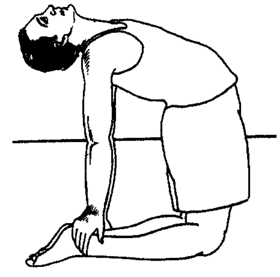
२१-वृश्चिकासन—कोहनीसे पंजेतकका भाग भूमिपर रखकर उसके सहारे सब शरीरको सँभालकर दीवालके सहारे पाँवको ऊपर ले जाय, तत्पश्चात् पाँवको घुटनोंमें मोड़कर सिरके ऊपर रख दे।

दूसरे प्रकारसे केवल पंजोंके ऊपर ही सब शरीरको सँभालकर रखनेसे भी यह आसन किया जाता है।



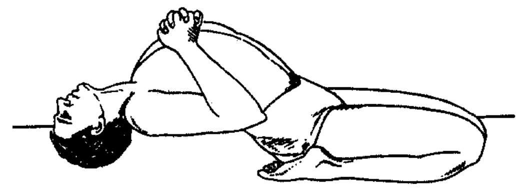
फल—हाथों और बाहोंमें बलवृद्धि, पेट तथा आँतोंका निर्दोष होना, शरीरका फुर्तीला और हल्का होना, मेरुदण्डका शुद्ध और शक्तिशाली होना, तिल्ली, यकृत् एवं पाण्डु रोग आदिका दूर होना।

२२-उष्ट्रासन—वज्रासनके समान हाथोंसे एड़ियोंको पकड़कर बैठे। पश्चात् हाथोंसे पाँवोंको पकड़े हुए नितम्बोंको उठाये, सिर पीछे पीठकी ओर झुकावे और पेट भरसक आगेकी ओर निकाले।



फल—यकृत्, प्लीहा, आमवात आदि पेटके सब रोग दूर होते हैं और कण्ठ नीरोग होता है।

२३-सुप्त वज्रासन—वज्रासन करके चित लेटे, सिरको जमीनसे लगा हुआ रखे, पीठके भागको भरसक जमीनसे ऊपर उठाये रखे और दोनों हाथोंको बाँधकर छातीके ऊपर रखे अथवा सिरके नीचे रखे।



फल—पेट, छाती, गर्दन और जंघाओंके रोगोंको दूर करता है।

मोटापा दूर करें

(डॉ० श्रीअरुणजी भारती, डी०ए०टी०, एम०डी० (ए०एम०), एम०आई०एम०एस०)

मोटापा एक प्रकारका रोग है, इसके होनेके दो मुख्य कारण हैं, एक है—आनुवंशिक अर्थात् वंशगत। जिनके माता-पिता मोटे होते हैं, उनकी संतान प्राय: मोटी होती है। दूसरा कारण है—भूखसे अधिक खाना, शारीरिक श्रम नहीं करना, आरामतलबीका जीवन बिताना। जो लोग खाना खाकर पड़े रहते हैं, उन्हें मोटापा आ जाता है। **साधारणतः मोटापाकी पहचान यह है कि जितने इंच शरीरकी ऊँचाई हो, उतने किलो० शरीरका वजन ठीक है। इससे अधिक होनेपर 'मोटा' और कम होनेपर 'पतला' कहा जायगा।**

बचपन और किशोर अवस्थामें दौड़-भाग, खेल-कूदका प्राधान्य होता है—इस कारण शरीरमें फालतू चर्बी जमा नहीं हो पाती, खर्च हो जाती है। जो उम्रके बढ़नेपर शरीरसे मेहनत नहीं करते और कार्बोहाइड्रेट तथा अधिक केलोरीवाला आहार करते हैं, उनके शरीरपर चर्बी जमा होने लगती है। पेट, कूल्हा, कमर, नितम्ब मोटे हो जाते हैं। चलने-फिरनेमें कष्ट होता है। खूनका दौरा धीमा पड़ जाता है। रक्तवाहिनी नसोंमें कोलस्ट्राल (वसा) जम जाता है। इस कारण हाई ब्लडप्रेशर और हृदयरोग हो जाते हैं। शारीरिक श्रम नहीं होनेसे क़ब्ज़ हो जाता है—अपच और डायबिटीज (मधुमेह) हो जाता है। रक्त-सञ्चार ठीक नहीं होनेसे रोग-प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है। मोटापासे शरीर बेडौल हो जाता है। मोटापा एक घातक रोग बन जाता है। अत: मोटापा शुरू होते ही इसको दूर करनेके उपाय करने चाहिये।

मोटापा दूर करने या इससे बचनेके दो मुख्य उपाय हैं, पहला है—भोजन-सुधार और दूसरा है—प्रतिदिन शारीरिक श्रम। जिन पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेट अधिक हो उनका सेवन न करें। तेल, घी, डालडासे बनी चीजें न खायें। आलू, शकरकन्द और चीनीसे बनी चीजें न खायें। दिनचर्या इस प्रकार बनायें—सबेरे जल्दी उठें और एक गिलास कुनकुने गरम पानीमें क़ागज़ी नीबू निचोड़कर उसमें दो चम्मच शुद्ध मधु मिलाकर पी जायँ तथा कुछ समय टहलें। हाजत होते ही शौचके लिये चले जायँ। इसके बाद दातौन-मंजनकर टहलनेके लिये निकल जायँ। नित्य तीन-चार किलोमीटर अवश्य टहलें। जो बाहर जाना नहीं चाहते वे अपने घरकी छतपर या आँगनमें टहल सकते हैं। हल्के व्यायाम कर सकते हैं। नाश्तेमें रसदार फल लें या मक्खन निकला मट्ठा लें। दोपहरके भोजनमें जौके आटेकी एक-दो रोटी, उबली सब्जी, कच्चा सलाद और सूप लें। तीसरे पहर फलोंका रस लें। रातके भोजनमें हरी उबली सब्जी और एक-दो जौके आटेकी रोटी खायें। भोजनके तुरंत बाद पानी न पीयें। मोटापा कम करनेके लिये भोजनमें रोटी कम खायें और सब्जी, कच्चा सलाद और सूप अधिक लें। दिनमें न सोयें। मोटी महिलाओंको घरके काम यथासम्भव स्वयं करने चाहिये। इस तरह मोटापा नहीं बढ़ेगा। शरीरमें ताजगी और स्फूर्ति आयेगी। शरीर सुन्दर, स्वस्थ और कान्तिमान् बनेगा।

क्रोध, चिन्ता और शोक —ये स्वास्थ्य और सौन्दर्यका नाश करते हैं, अत: इनसे बचते रहें।

बुढ़ापा दूर रखनेवाला संजीवनी पेय

प्रकृतिके नियमानुसार बुढ़ापा आना तो निश्चित है, पर उचित आहार-विहार और स्वास्थ्यरक्षक नियमोंका पालन करके इसे यथासम्भव दूर रखा जा सकता है। इस दिशामें एक सफल सिद्ध अनुभूत प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

शरीरशास्त्री वैज्ञानिकोंका मानना है कि जबतक शरीरके कोषाणुओं (Cells)-का पुनर्निमाण ठीक-ठीक होता रहेगा, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा और शरीर युवा बना रहेगा। जब इस प्रक्रियामें विघ्न पड़ता है और कोषाणुओंके पुनर्निर्माणकी गति मन्द होने लगती है, तब शरीर बूढ़ा होने लगता है। इस वैज्ञानिक विश्लेषणसे एक निष्कर्ष यह निकला कि यदि विटामिन 'ई', विटामिन 'सी' और 'कोलीन'—ये तीन तत्त्व पर्याप्त मात्रामें प्रतिदिन शरीरको आहारके माध्यमसे मिलते रहें तो शरीरके कोषाणुओंका पुनर्निर्माण बदस्तूर ठीकसे होता रहेगा और जबतक यह प्रक्रिया ठीक-ठीक चलती रहेगी, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा। बुढ़ापा आयेगा जरूर, पर देरसे आयेगा।

इस निष्कर्षपर विचार करके पूनाके श्रीश्रीधर अमृत भालेरावने यह निश्चय किया कि इन तीनों तत्त्वोंको दवाओंके माध्यमसे प्राप्त करनेकी अपेक्षा प्राकृतिक ढंगसे, आहारद्वारा प्राप्त करना अधिक उत्तम और गुणकारी रहेगा। लिहाजा काफी खोजबीन और परिश्रम करके वे इस नतीजेपर पहुँचे कि विटामिन 'ई' अंकुरित गेहूँसे, विटामिन 'सी' नींबू, शहद और आँवलेसे एवं 'कोलीन' मेथीदानेसे प्राप्त किया जा सकता है। इन तीनों पदार्थोंका सेवन करनेके लिये उन्होंने यह फार्मूला बनाया—

४० ग्राम यानी ४ चम्मच [बड़े] गेहूँ और १० ग्राम मेथीदाना—दोनोंको ४-५ बार साफ पानीसे अच्छी तरह धो लें, ताकि इनपर यदि कीटनाशक दवाओंके छिड़कावका प्रभाव हो तो दूर हो जाय। धोनेके बाद आधा गिलास पानीमें डालकर चौबीस घंटेतक रखें। चौबीस घंटे बाद पानीसे निकालकर एक गीले तथा मोटे कपड़ेमें रखकर बाँध दें और चौबीस घंटेतक हवामें लटकाकर रखें। गिलासका पानी फेंकें नहीं, इस पानीमें आधा नीबू निचोड़कर दो ग्राम सोंठका चूर्ण डाल दें। इसमें २ चम्मच शहद घोलकर सुबह खाली पेट पी लें। यह पेय बहुत शक्तिवर्धक, पाचक और स्फूर्तिदायक है, इसीलिये इसका नाम श्रीभालेरावने 'संजीवनी पेय' रखा है। चौबीस घंटे पूरे होनेपर हवामें लटके कपड़ेको उतारकर खोलें और गेहूँ तथा मेथीदाना एक प्लेटमें रखकर इसपर पिसी काली मिर्च और सेंधा नमक बुरक दें। गेहूँ और मेथीदाना अंकुरित हो चुका होगा। इसे खूब चबा-चबाकर प्रातः खायें। यदि इसे मीठा करना चाहें तो काली मिर्च और नमक न डालकर गुड़ मसलकर डाल दें, शक्कर न डालें। यह मात्रा एक व्यक्तिके लिये है।

इस फार्मूलेका सेवन करनेसे ये तीनों तत्त्व तो शरीरको प्राप्त होते ही हैं, साथ ही एनजाइम्स, लाइसिन, आइसोल्यूसिन, मेथोनाइन आदि स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक तत्त्व भी प्राप्त होते हैं। यह फार्मूला सस्ता भी है और बनानेमें सरल भी, इसमें गजबकी शक्ति है, यह स्फूर्ति और पुष्टि देनेवाला है।

इस प्रयोगको प्रौढ़ ही नहीं वृद्ध स्त्री-पुरुष भी कर सकते हैं। यदि दाँत न हों या कमजोर हों तो वे अंकुरित अन्न चबा नहीं सकते, ऐसी स्थितिमें निम्नलिखित फार्मूलेका सेवन करना चाहिये—

प्रातःकाल एक कटोरी गेहूँ और तीन चम्मच मेथीदाना अच्छी तरह धो-साफकर चार कप पानीमें डालकर चौबीस घंटे रखें। दूसरे दिन सुबह इसका एक कप पानी लेकर नीबू तथा शहद डालकर पी लें। शेष तीन कप पानी निकालकर फ्रिजमें रख दें। यदि फ्रिज न हो तो पानी गिलासमें डालकर गिलासपर गीला कपड़ा लपेट दें और गिलास ठंडे पानीमें रख दें और ढक दें, ताकि पानी शामतक खराब न हो। इस पानीको शामतक एक-एक कप पीकर समाप्त कर दें। गेहूँ और मेथीदानेको फेंकें नहीं, बल्कि फिरसे ४ कप पानीमें डालकर रख दें। दूसरे दिन सुबह १ कप पानी और शेष पानी दिनभरमें पी लें। अब नया गेहूँ तथा मेथीदाना लें और सुबह पानीमें डालकर रख दें। दो दिनतक भिगोये हुए गेहूँ और मेथीदानेको सुखा लें और पिसानेके रखे गये गेहूँमें मिला दें। इस तरह बिना दाँतके भी इस नुस्ख़ेका सेवनकर लाभ उठा सकते हैं।

[प्रेषक—श्रीविट्ठलदासजी तोष्णीवाल]

आँवला खायें—बुढ़ापा दूर भगायें

(डॉ० श्रीश्यामसुन्दरजी भारती)

आँवला सर्वश्रेष्ठ शक्तिदायक फल है। इसका दूसरा नाम अमृत-फल है। सचमुच ही इसमें अमृतके गुण हैं। यह विटामिन 'सी' का अनन्त भण्डार है। विटामिन 'सी' का अर्थ है शक्ति और स्वास्थ्यका आवश्यक तत्त्व। एक पुष्ट ताजे आँवलेमें बीस नारंगियोंके बराबर विटामिन 'सी' रहता है। इस प्रकार यह शरीरको स्वस्थ बनानेके साथ-साथ सुन्दर भी बनाता है। इससे रक्त शुद्ध होता है और शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। आँवलेकी विशेषता यह है कि इसके विटामिन गरम करने या सुखानेसे भी नष्ट नहीं होते। त्रिफला-चूर्णका मुख्य घटक आँवला ही है। च्यवनप्राश इस अमृत-फलसे ही बनता है। महर्षि च्यवनने बुढ़ापा दूर भगानेके लिये अश्विनीकुमारसे उपाय पूछा था। उन्होंने च्यवन ऋषिको नित्य इस फलके सेवन करनेका निर्देश दिया था। इसीके सेवनसे च्यवन ऋषिका बुढ़ापा दूर हो गया था। इन्हींके नामपर 'च्यवनप्राश' नाम पड़ गया। ओज, बल एवं युवावस्थाको स्थिर रखने और बुढ़ापा दूर करनेका यह सर्वश्रेष्ठ आयुर्वेदिक औषध है।

आँवला सर्वरोगनाशक दिव्य अमृत-फल है। यह दाँतों-मसूढ़ोंको मजबूत बनाता है, आँखोंकी ज्योति बढ़ाता है। शरीरमें बल-वीर्यकी वृद्धि करता है। हाई ब्लडप्रेशर, हृदयरोग, कैंसर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, स्नायुरोग, चर्मरोग, लीवर और किडनीके रोग, रक्तके रोग, पीलिया, टी०बी०, मूत्ररोग और हड्डियोंके रोगोंको दूर करनेमें इसका विशेष योगदान है।

आँवला त्रिदोषनाशक है। इसमें लवणरसको छोड़कर बाकी पाँचों रस भरे पड़े हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंने आँवलापर खोज की है और स्वीकार किया है कि आँवलामें पाया जानेवाला एंटी ऑक्सीडेंट इन्जाइम बुढ़ापेको रोकता है। यह खोज तो हजारों वर्ष पहले भारतके प्राचीन ऋषि-मुनियोंने कर डाली थी।

आँवला-तेल सिरके रोगों और बालोंके लिये परम हितकारी है। इसे घरमें बना लेना चाहिये। बाज़ारमें मिलनेवाले अधिकांश आँवला-तेलोंमें कृत्रिम सेंट मिला रहता है। घरमें बनाना चाहें तो तिलके तेलमें ताजे आँवलेका रस मिलाकर गरम करें। जब उसका पानी जल जाय तो उतारकर ठंडा करके बोतलमें भर लें और उपयोग करें।

आँवलेमें जितने रोग-प्रतिरोधक, रक्त-शोधक और बल-वीर्यवर्धक तत्त्व हैं, उतने संसारकी किसी वस्तु या औषधिमें नहीं हैं। इसलिये स्वास्थ्य-सुख चाहनेवालोंको अपने आहारमें आँवलेको प्रमुख स्थान देना चाहिये। लगभग बीस ग्राम च्यवनप्राश एक गिलास दूधके साथ नियमित सेवन करनेसे आप इसके चमत्कारी आशुफलप्रद गुणोंसे परिचित हो जायँगे। यह पुनर्यौवन प्रदान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आहार है।

पानी भी एक दवा है—इसके चमत्कार देखें

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है—'**अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्**' अर्थात् अजीर्णमें पानी दवाका काम करता है और भोजन पचनेके बाद पानी पीनेसे शरीरमें बल होता है। बहुत-से रोगोंमें यह दवाका काम करता है। ठंडे और गरम जलमें अलग-अलग औषधीय गुण हैं। कई रोगोंमें ठंडा पानी और कई रोगोंमें गरम पानी दवाका काम करता है।

जब कभी किसीको आप आगसे जलने या झुलसनेसे आक्रान्त देखें, तुरंत उसके जले-झुलसे अङ्गको ठंडे पानीमें कम-से-कम एक घंटा डुबोकर रखें—उसे परम शान्ति मिलेगी, जलन दूर होगी और घाव या फफोला नहीं होगा। यदि पूरा शरीर जल जाय तो तुरंत उसको बड़े पानीके हौजमें या तालाबमें डुबो दें। साँस लेनेके लिये नाकको पानीके बाहर रखें। यह याद रखें कि जला-झुलसा अङ्ग पानीमें लगातार एक या दो घंटे डूबा रहे। उसपर पानी नहीं छिड़कना चाहिये—इससे हानि होती है। पानीमें डुबोये

रखना ही कारगर इलाज है। यदि अस्पताल ले जानेके चक्करमें समय नष्ट करेंगे तो फफोले पड़ जायँगे, घाव सांघातिक बन जायँगे—जलन और कष्ट बढ़ जायगा। बहुतोंको ऐसा झूठा भ्रम है कि जले अङ्गको पानीमें डुबोनेसे घाव बढ़ेंगे। सच्ची बात यह है कि जले अङ्गपर पानीके छींटे देने या पानी डालनेसे घाव बढ़ जाते हैं। हम तो पीडित अङ्गको लगातार एक-दो घंटे ठंडे पानीमें डुबोये रखनेकी सिफ़ारिश करते हैं। तभी आपको ठंडे पानीका चमत्कार दिखायी देगा।

इसी तरह जब किसीको मोच आ जाय या चोट लगे तो तुरंत उस स्थानपर खूब ठंडे पानीकी पट्टी लगा दे—बर्फ भी लगा सकते हैं। इससे न तो सूजन होगी, न दर्द बढ़ेगा। गरम पानीकी पट्टी लगायेंगे या सेंक करेंगे तो सूजन आ जायगी और दर्द बढ़ जायगा। यदि चोट लगने या कटनेसे खून आ जाय तो वहाँ बर्फ या खूब ठंडे पानीकी पट्टी चढ़ा दें, आराम होगा।

गरम पानीका लाभ वातरोगों—जोड़ोंका दर्द, कमरका दर्द, घुटनेका दर्द, गठिया-कंधेकी जकड़नमें होता है। इसमें गरम पानीका या भापका सेंक दिया जाता है।

इंजेक्शन लगानेके बाद यदि उस स्थानपर सूजन आ जाय या दर्द बढ़े तो ठंडे पानीकी पट्टी या बर्फ लगायें। वहाँ गरम पानीका सेंक न करें।

यदि रातमें नींद न आती हो तो सोनेके पहले दोनों पैरोंको घुटनोंतक सहने योग्य गरम पानीसे भरी बाल्टी या टबमें पंद्रह मिनट डुबोये रखें—इसके बाद पैरोंको बाहर निकालकर पोंछ लें और सो जायँ। नींद आयेगी। यह ध्यान रखें कि जब गरम पानीमें पैर डुबायें तब सिरपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ा हुआ तौलिया अवश्य रखें।

आपने अस्पतालों और नर्सिंग होमोंमें देखा होगा कि पतले दस्त या उल्टी-दस्तके रोगियोंको सेलाइनका पानी चढ़ाते हैं। यह सेलाइन क्या है—नमकीन पानी है। इससे रोगी ठीक हो जाता है। इसी प्रकार बच्चोंके पतले दस्त या डायरियामें जीवन-रक्षक घोल बनाकर देनेसे बच्चे ठीक हो जाते हैं। शरीरमें पानीकी कमी न होने पाये इसीलिये यह घोल दिया जाता है। पानीकी कमीसे मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि रोगीके शरीरमें पानी पहुँचाया जाता है—चाहे मुखसे हो या सेलाइन चढ़ाकर। ये पानीके कुछ चमत्कार हैं। (अ० भारती)

आरोग्य-प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन—पञ्चगव्य

(शास्त्रार्थ पंचानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' इस शास्त्रवचनके अनुसार पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति आरोग्यसम्पन्न शरीरके द्वारा ही सम्भव है और यह कितना आश्चर्यजनक तथ्य है कि विभिन्न प्रकारके रोगोंकी निवृत्तिके लिये नितान्त आवश्यक जीवन-तत्त्व (Vitamins) हम केवल पञ्चगव्य-सेवनसे अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। गायके उदरको जो जीवन-तत्त्वोंका अक्षय स्रोत कहा जाता है, वह कोई यूँ ही कहा गया अतिरञ्जनापूर्ण वाक्य नहीं है, अपितु व्यावहारिक अनुभवोंका यथार्थ निष्कर्ष है।

पूर्वजन्मकृत पाप ही कालान्तरमें रोग बनकर प्रकट होते हैं और उनके उपशमनके लिये औषधके साथ-साथ दान, जप, होम और देवाराधन—इन चार कार्योंको करनेका निर्देश भी भिषगाचार्योंने दिया है—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस वचनका सार-संक्षेप इतना ही है कि रोगोंको दूर करनेके लिये दो माध्यम हैं—देवाराधन और दवा। इन दोनों ही माध्यमोंकी संसिद्धि पञ्चगव्यमें संनिहित है। यज्ञ-यागादि समस्त धार्मिक अनुष्ठान कर्ता और आचार्यद्वारा पञ्चगव्यपानके अनन्तर ही प्रारम्भ किये जाते हैं; क्योंकि हमारी अस्थियोंतकमें प्रविष्ट पाप-राशिको पञ्चगव्य उसी प्रकार विनष्ट कर डालता है, जैसे अग्नि ईंधनको। यथा—

यद्यदस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

इस प्रकार आध्यात्मिक संदर्भमें तो पञ्चगव्यकी लोकोत्तर महिमा है ही, शारीरिक एवं मानसिक रोगोंको निर्मूल कर डालनेमें भी वह अनुपम है। पञ्चगव्यके घटक पदार्थ अर्थात् गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोमयके रोगनिवारक गुणोंके वर्णनसे आयुर्वेदिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। आइये, पहले गव्य पदार्थोंके उन गुण-गणोंका संक्षिप्त सिंहावलोकन करें और देखें कि वे किन-किन रोगोंपर अचूक रामबाणकी तरह कार्य करते हैं। बादमें फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी शास्त्रीय विधिकी चर्चा करेंगे।

गोदुग्ध—गायका दूध अत्यन्त स्वादिष्ठ, स्निग्ध, रुचिकर, बलवर्धक, मेधाजनक, नेत्रज्योतिवर्धक, तुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, कान्तिजनक एवं हृद्य रसायनके रूपमें तो स्वीकार किया ही गया है, साथ-ही-साथ वह रक्तपित्त, अतिसार, उदावर्त, जीर्ण ज्वर, मनोव्यथा, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, पाण्डु, क्षय, हृदयरोग, गुल्म, उदरशूल किंवा दाह-जैसे घातक रोगोंके लिये भी अव्यर्थ औषधका कार्य करता है। धारोष्ण दुग्धका सेवन सर्वरोगविनाशक माना गया है। दूधकी मलाई धातुवर्धक होनेके साथ-साथ वात एवं पित्तजनित दोषोंको तथा रक्तरोगोंको समूल विनष्ट कर डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य रखती है। '**धारोष्णममृतोपमम्**' अथवा '**क्षीरात्परं नास्ति हि जीवनीयम्**' इत्यादि वचनोंका स्वारस्य गोदुग्धके उपर्युक्त प्रभावोंके निरूपणमें ही है।

भारतीय आयुर्वेद-विज्ञानके मनीषियोंने प्रारम्भिक कालसे ही औषध एवं खाद्यकी दृष्टिसे गायके दूधकी महत्ताको पहचान लिया था। प्राचीनतम चिकित्साग्रन्थ चरकसंहितामें गोदुग्धके निम्नाङ्कित दस गुणोंका वर्णन किया गया है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥

(च०सू० २७। २१७)

अर्थात् गायके दूधमें दस गुण होते हैं—स्वादिष्ठ, शीत (ठंडा), कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य लसदार, भारी और बाह्य प्रभावको विलम्बसे ग्रहण करनेवाला तथा मनको प्रसन्न करनेवाला।

इतना ही नहीं प्रातर्दोह (सूर्योदयके समय दुहा हुआ), संगव (दोपहरके लगभग दुहा हुआ) एवं सायंदोह (सायंकालके समय दुहा हुआ) गोदुग्ध पृथक्-पृथक् रूपसे प्रभाव रखता है, इस प्रकारका विश्लेषण भावप्रकाश नामक ग्रन्थमें उपलब्ध होता है। यथा—

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
बाले वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं चक्षुर्हितं संस्मृतम्॥

(पू०खं० ६। १४। ३९)

दूध दोपहरके पहले वीर्यवर्धक और अग्निदीपक तथा दोपहरमें बलकारक एवं कफको विनष्ट करनेवाला, पित्तको हरनेवाला और मन्दाग्निको नष्ट करनेवाला, बालपनमें वृद्धि करनेवाला एवं वृद्धावस्थामें क्षयनाशक और शुक्रवर्धक होता है। प्रतिदिन रात्रिमें सेवन करनेसे दूध अनेक दोषोंको दूर करता है। अतः दूध सदा सेवनीय है।

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंने भी गायके दूधमें विटामिन ए, बी, सी, डी, ई तथा अन्य शरीर-पोषक एवं दोषनिवारक तत्त्वोंका पता लगाकर '**गवां क्षीरं रसायनम्**' इस उक्तिको चरितार्थ कर दिखाया है।

गोदधि—सुश्रुतसंहितामें गायके दहीके गुण इस प्रकार वर्णित किये गये हैं—

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्॥
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम्।

(सू० ४५। ६७-६८)

अर्थात् गायके दूधका दही स्निग्ध, परिणाममें मधुर, पाचनशक्तिवर्धक, बलवर्धक, वातहारक, पवित्र और रुचिकारक होता है।

यद्यपि गायका दही अनेक भयानक रोगोंको जड़-मूलसे विनष्ट कर डालनेवाला माना गया है तथापि वातजन्य अर्श, त्रिदोष, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, उदरशूल, सूर्यावर्त (आधाशीशी) और दाह-जैसे महान् कष्टप्रद रोगोंके लिये तो यह रामबाण ही है। इतना ही नहीं मधु, मक्खन, पीपल, सोंठ, काली मिर्च, वच और सेंधा नमककी समान-समान मात्रा लेकर उतनी ही मात्रामें गायका दही मिलाकर तुरंत पिलानेसे सर्पका भी विष दूर हो जाता है।

गायकी छाछकी तो महिमा ही निराली है। कहा जाता

है कि '**तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्**' छाछ तो देवराज इन्द्रको भी दुर्लभ है। संस्कृतकी यह लोकोक्ति रूपान्तरसे छाछके लोकोत्तर गुणोंका ही तो वर्णन कर रही है। प्रमेह, मेद, संग्रहणी, अजीर्ण, भगंदर, विषम ज्वर, मलस्तम्भ, उदरकृमि, सूजन, अरुचि, पित्त-प्रकोप-जैसे भीषण रोगोंको विनष्ट करके रोगीको स्थायी स्वास्थ्य-सम्पत्ति प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ पदार्थ गायकी छाछ ही है। सेंधा नमक और अजवाइन मिलाकर छाछ पी लेनेसे कोष्ठबद्धता चुटकियोंमें दूर हो जाती है।

हाँ, दही-सेवनके सम्बन्धमें कुछ विधि-निषेध भी हैं। उनपर भी ध्यान देना बहुत जरूरी है। किस ऋतुमें दही खाना उपयुक्त है और किसमें नहीं, इस संदर्भमें सुश्रुतसंहिताका निर्देश इस प्रकार है—

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्॥
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।

(सू० ४५।८०-८१)

अर्थात् शरद्, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुओंमें दही खाना प्राय: अच्छा नहीं होता। हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही खाना ठीक होता है।

गोघृत—गायके घीके गुण तो वास्तवमें असंख्य हैं। आधुनिक चिकित्सकोंकी बात तो जाने दें, जो चालीस वर्षकी आयुके बाद घी खानेके विषयमें नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, परंतु आयुर्वेदके तत्त्वज्ञ विद्वानोंने तो '**आयुर्वै घृतम्**' कहते हुए घीको ही आयुका पर्याय माना है। घीके गुणोंके संदर्भमें इससे अधिक सटीक उक्ति और क्या हो सकती है?

चिकित्साशास्त्रोंमें घीके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्॥

(सु० सू० ४५।९७)

अर्थात् गायका घी गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ है। वह विपाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त और विषका नाश करनेवाला, आँखकी ज्योति एवं शरीरकी सामर्थ्यको बढ़ानेवाला है।

आँख, कान और नासिकाके रोगोंमें तथा खाँसी, कोढ़, मूर्च्छा, ज्वर, कृमि और वात, पित्त, कफजन्य विषके उपद्रवमें गायका घी महौषधिका कार्य करता है। गायका घी जितना पुराना हो जाता है, उतना ही वह गुणकारी होता है। दस वर्ष पुराना घी '**जीर्ण**', सौसे एक हजार वर्षतक पुराना '**कौम्भ**' और ग्यारह सौ वर्षोंसे अधिक पुराना घी '**महाघृत**' कहलाता है।

हैजा, अग्निमन्दता, क्षय, आमव्याधि एवं कोष्ठबद्धतामें घृतका सेवन हानिकारक है। ज्वरमें अथवा ज्वरजनित दाहमें घी खानेसे नहीं, अपितु मालिश करनेसे लाभप्रद होता है।

गायके दूध, दही और घीके इन उत्तम गुणोंके कारण ही ये तीनों प्राचीन कालसे भारतीयोंके भोजनके अभिन्न अङ्ग बने हुए हैं। '**विना गोरसं को रसो भोजनानाम्**' (बिना गोरसके भोजनमें क्या रस है?) यह उक्ति ही इन तीनोंकी महिमाको आँकनेके लिये पर्याप्त है।

गोमूत्र—चरकसंहितामें गोमूत्रके विषयमें निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है—

गव्यं समधुरं किंचिद् दोषघ्नं कृमिकुष्ठनुत्।
कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्॥

(सू० १।१०१)

अर्थात् गोमूत्र सेवन करनेसे कृमिरोग, कुष्ठरोग, खुजली और प्लीहारोग दूर हो जाते हैं। गोमूत्र कटु, तीखा, खारा, कसैला, आंशिक मधुर, पित्तवर्धक और मेदक होता है। इसके सेवनसे समाप्त हो जानेवाले रोगोंकी सूची बहुत लंबी है, तथापि साररूपमें यह समझ लें कि पाण्डु, कण्डु, अर्श, कुष्ठ, चित्री, भ्रम, त्वचारोग, मूत्ररोग, दमा, अतिसार-जैसे कठिन रोग केवल गोमूत्र-सेवनसे ही निर्मूल किये जा सकते हैं। गुर्देके रोगोंको तो यह जड़से मिटा डालता है। हमारे पूज्य पितृचरण (शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्री) जब गुर्देके असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गये थे और किसी भी औषधिसे लाभ नहीं पहुँच पा रहा था, तब कुरुक्षेत्र-भूमिके पीयूषपाणि वैद्यराज पं० श्रीधरजीने उन्हें अपनी माँका दूध पीकर ही रहनेवाली छोटी बछियाका मूत्र इकतालीस दिनोंतक पिलाकर पूर्णतया स्वस्थ कर दिया था।

गोमय (गोबर)—रोगोंके कीटाणु और दूषित गन्धको

दूर करनेमें गोबर अद्वितीय है। प्राचीन कालमें प्रत्येक गृहस्थ न केवल घर-आँगन और रसोईमें ही गोबरसे लेप किया करता था, अपितु कोई भी माङ्गलिक कार्य प्रारम्भ करनेसे पूर्व गोबरसे भूमि-लेपन अनिवार्य माना जाता था। विधिग्रन्थोंमें पदे-पदे '**गोमयेन भूमिमुपलिप्य**' इस प्रकारके निर्देश प्राप्त होते हैं। अनेक रोगोंको दूर करनेमें भी गोबरकी उपयोगिता है। जैसे—गोबर मलकर स्नान करनेसे खुजली दूर हो जाती है तथा अत्यधिक पसीना आनेपर सूखे हुए गोबरका चूर्ण शरीरपर रगड़कर कुछ समय बाद स्नान करनेसे अधिक पसीना आना बंद हो जाता है।

गोबरकी राख भी अत्यन्त गुणकारी मानी गयी है। शीतलाका प्रकोप होनेपर निकले छाले अत्यन्त कष्टप्रद होते हैं। ऐसेमें गोबरकी राखको छानकर रोगीके नीचे बिछा देनेपर उसे आराम मिलता है। ऐसेमें यही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। बच्चोंके पेटमें छोटे-छोटे कृमि हो जानेपर छानी हुई राख दस गुना पानीमें मिलाकर दो-दो घूँट बालकको दो-चार बार पिलानेसे पेटके कीड़े विनष्ट हो जाते हैं।

पञ्चगव्य बनानेकी विधि—लौगाक्षिस्मृति अथवा पाराशरस्मृति-प्रभृति ग्रन्थोंमें पञ्चगव्य-निर्माणका विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ पाँचों गव्य-पदार्थोंका परिमाण अर्थात् दूध, दही, घी आदिकी कितनी-कितनी मात्रा ली जाय, इसका विवरण तो है ही, किस रंगकी गायसे कौन-सी वस्तु लेनी चाहिये, इस तथ्यका भी विज्ञानसंगत विश्लेषण किया गया है। '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'—इस शास्त्रवचनके अनुसार हम सूर्यकिरणोंसे आरोग्य प्राप्त करते हैं। परंतु विभिन्न रंगोंके माध्यमसे सूर्यकी किरणोंमें सामर्थ्यकी वृद्धि होती ही है, यह प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। आतशी शीशेद्वारा सूर्यतापसे अग्नि प्रज्वलित करते समय अन्य रंगोंकी अपेक्षा यदि काले रंगका वस्त्र प्रयोग किया जाय तो वह शीघ्र आग पकड़ लेता है। अन्य रंगोंके साथ भी ऐसे ही कारण हैं।

पञ्चगव्य-निर्माणमें भी गायोंके संदर्भमें जो रंगोंका विवरण दिया गया है, वह इन्हीं वैज्ञानिक कारणोंसे साभिप्राय है। अन्तमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि विभिन्न रंगोंकी गायें उपलब्ध न हो सकें तो पाँचों वस्तुएँ कपिला-वर्णकी यानी स्वर्ण-वर्णकी गायसे ही प्राप्त की जा सकती हैं—'**सर्वं कापिलमेव वा।**' पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्।
पयः काञ्चनवर्णाया नीलाया एव वै दधि॥
घृतं तु सर्ववर्णायाः सर्वं कापिलमेव वा।

(लौगाक्षिस्मृति)

अर्थात् लाल रंग (ताम्रवर्ण)-की गायका मूत्र और श्वेत गायका गोबर, काञ्चन वर्णकी गायका दूध तथा नीले रंगकी गायका दही, सर्ववर्ण (चितकबरी) रंगकी गायका घी अथवा पाँचों वस्तुएँ कपिला गायकी ही हो सकती हैं।

पाँचों द्रव्योंका अनुपात निम्न प्रकारसे है—

गोमूत्रभागस्तस्यार्धं शकृत् क्षीरस्य तत् त्रयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्यैक एकश्च कुशवारिणः॥

अर्थात् पञ्चगव्यमें एक भाग घृत, एक भाग गोमूत्र तथा एक भाग कुशोदक, दो भाग दही, तीन भाग दूध (अन्य स्मृतियोंमें सात भागका भी उल्लेख मिलता है) और आधा भाग गोमय होना चाहिये।

विशेष प्रभावशाली बनानेके लिये वेदमन्त्रोंसे पाँचों द्रव्योंको अभिमन्त्रित भी किया जा सकता है। यथा—

गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥
शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्येति कुशोदकम्॥

अर्थात् '**गायत्री**' मन्त्रद्वारा गोमूत्रको, '**गन्धद्वारां०**' आदि मन्त्रद्वारा गोमयको, '**आप्यायस्व०**' मन्त्रद्वारा गोदुग्धको, '**दधिक्राव्णो०**' इत्यादि मन्त्रसे दहीको, '**शुक्रमसि०**' और '**ज्योतिरसि०**' आदि मन्त्रोंद्वारा गोघृतको तथा '**देवस्य त्वा०**' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रित करके सम्मिलित करना चाहिये।

भारतेतर देशोंमें जहाँ गलकम्बल (सास्ना)-वाली भारतीय नस्लकी गायें उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ पञ्चगव्य बना पाना सम्भव ही नहीं होगा। अतः वहाँ धार्मिक कृत्योंमें गङ्गाजलका ही उपयोग करना चाहिये। गाय-जैसे प्रतीत होनेवाले किसी अन्य पशुके तो वैसे उपयोगका प्रश्न ही नहीं है।

सर्वरोगहर टॉनिक—पञ्चगव्य

(स्व० पं० श्रीहिमकरजी शर्मा, वैद्य आयुर्वेदभास्कर)

एलोपैथिक तीव्र औषधियाँ एक बीमारी हटाकर दूसरी पैदा करती हैं। अनेक औषधियाँ रिएक्शन करती हैं, परंतु पञ्चगव्य यानी गौके मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घीको एक सुनिश्चित अनुपातमें मिलाकर औषधिके रूपमें सेवन किया जाय तो लाभ-ही-लाभ होता है, कोई रिएक्शन नहीं होता। पञ्चगव्य एक सशक्त टॉनिक है। पञ्चगव्य बनानेकी विधि जान लें—छाना हुआ गोमूत्र ५ चम्मच, कपड़ेमें रखकर निचोड़ा गया गोमय-रस १ चम्मच, गोदुग्ध २ चम्मच, गो-दधि १ चम्मच, गोघृत १ चम्मच, शुद्ध मधु २ चम्मच—इन छहों वस्तुओंको चाँदी अथवा काँचकी कटोरीमें रखकर मिलायें। प्रात: मुखशुद्धिके पश्चात् थोड़ा जल पीकर पञ्चगव्य धीरे-धीरे पीना चाहिये। आदत लगानेसे यह जलपानकी तरह आपको सबल बनायेगा। जाड़ेमें पञ्चगव्यकी मात्रा बढ़ा देनेसे आपको जलपान करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। पञ्चगव्य आरम्भ करनेके पूर्व एक सप्ताहतक त्रिफला, गोमूत्र अथवा गर्म दूधमें घृत डालकर पेट साफ कर लें। पञ्चगव्यका सेवन अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। गर्भवती माताओंको आप विटामिन कैप्सूल खिलाते हैं। यह कैप्सूल गर्भवतीका वजन बढ़ाता है, बच्चेको लाभ नहीं पहुँचाता। परंतु पञ्चगव्य गर्भस्थ बच्चेको पुष्ट करेगा। नॉर्मल डिलेवरी होगी। जच्चा-बच्चा दोनों स्वस्थ रहेंगे। डिलेवरीके बाद पञ्चगव्यमें घृतकी मात्रा बढ़ा दें, शरीरकी निर्बलता जल्दी हटेगी। शीतकालमें गोदुग्धमें किशमिश-खजूरको कूटकर मिला दें। पुरुषोंको शक्तिदाता तथा माताओंको पुष्टिकारक टॉनिक (विटामिन बी १२) मिलेगा।

पञ्चगव्यमें भी गोमूत्र महौषधि है। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड, पोटैशियम, कैलशियम, मैग्नेशियम, फॉस्फेट, पोटाश, अमोनिया, क्रिएटिनिन, नाइट्रोजन, लैक्टोज, हार्मोन्स (पाचक रस) तथा अनेक प्राकृतिक लवण पाये जाते हैं, जो मानव-शरीरकी शुद्धि तथा पोषण करते हैं। दन्तरोगमें गोमूत्रका कुल्ला करनेसे दाँतका दर्द ठीक होना सिद्ध करता है कि उसमें कार्बोलिक एसिड समाविष्ट है। बच्चोंके सुखंडी रोगमें गोमूत्रमें विद्यमान कैलशियम हड्डियोंको सबल बनाता है। गोमूत्रका लैक्टोज बच्चों-बूढ़ोंको प्रोटीन प्रदान करता है। हृदयकी पेशियोंको टोन-अप करता है। वृद्धावस्थामें दिमागको कमजोर नहीं होने देता। महिलाओंके हिस्टीरियाजनित मानस-रोगोंको रोकता है। सिफलिस-गोनोरिया-जैसे यौन रोगोंको मिटाता है। खाली पेट आधा कप गोमूत्र पिलानेसे यौन रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि गोमूत्रमें अमृता (गुडूची) अथवा शारिवा (अनन्तमूल)-का रस अथवा ५ ग्राम सूखा चूर्ण मिला दिया जाय तो बीमारी शीघ्र ठीक हो जाती है। मायोसिन, साइक्लिन-जैसी शक्तिशाली दवासे ठीक हुआ यौन रोग लौटकर आ सकता है, परंतु गोमूत्रसे ठीक किया गया यौन रोग कभी नहीं लौटता।

गोमूत्रका कार्बोलिक एसिड अस्थिस्थित मज्जा एवं वीर्यको परिष्कृत कर देता है। नि:संतानको संतान देता है। अनेक रोगी इसके प्रमाण हैं। एक नवयुवक यौन रोगग्रस्त युवतीके सम्पर्कमें आ गया। दोनों मेरे पास आये। मैंने गोमूत्रमें टिंचर कार्डम् (दालचीनीका तेल) मिलाकर एक वर्षतक पिलाया, दोनोंको आशातीत लाभ हुआ। गोमूत्रमें मधु मिलाकर युवतीका उपचार किया गया। इस चिकित्सासे लाभ हुआ। डिस्टिल वाटरमें गोमूत्र मिलाकर एनीमा भी लगाया गया। दोनों ठीक हो गये। कालान्तरमें नवयुवकका विवाह हुआ, उसे स्वस्थ पुत्रकी प्राप्ति हुई। मैंने इसे गोमाताका दिया हुआ आशीर्वाद समझा।

बच्चोंकी सूत्र-कृमि (थ्रेड वर्म)—आधा औंस गोमूत्रमें २ चम्मच मधु मिलाकर पिलानेसे बच्चोंके पेटकी कृमि निकल जाती है। शुद्ध मधु न मिले तो सुरक्ता अथवा साफी १ चम्मच मिलाकर गोमूत्र पिलायें। एक सप्ताहमें गोमूत्र पेटकी कृमिको निकालकर बच्चेको स्वस्थ बना देगा। टॉनिकके रूपमें गोमूत्र तथा मधु पिलानेसे उसके सभी रोग नष्ट हो जायँगे। बच्चा सदा स्वस्थ रहेगा।

गैस्ट्रिक—पावरोटी, बिस्किट, पकौड़े, फास्टफूड खिलानेसे पेटदर्द, गैस, खट्टी डकार तथा अम्लपित्त-जैसे रोग बहुत प्रचलित हैं। डॉक्टर गोलियाँ तथा मिक्स्चर देते हैं, परंतु रोग स्थायी हो जाता है। पक्काशय (ड्यूडनम)-की सूजनके कारण अल्सर होनेपर ऑपरेशन होता है। यदि आरम्भमें ही गोमूत्रका सेवन कराया जाय तो पाचनतन्त्र धीरे-धीरे सबल बन जायगा और रोगमुक्ति अवश्य मिलेगी। यदि गैसपीडितको खट्टी उलटी हो तो उसे अविपत्तिकर चूर्ण मिलाकर गोमूत्रका सेवन कराना चाहिये। गोमूत्र-सार अथवा गोमूत्र-क्षार-वटी गोघृतमें मिलाकर भोजनसे पहले सेवन कराना चाहिये। गर्मीके मौसममें गोमूत्र-वटी ग्लूकोजके शरबतसे लें, जाड़ेमें मधु मिलाकर सेवन करें। पेप्टिक अल्सर हो तो आरोग्यवर्धिनी दो गोली जलसे खिलाकर आधा घंटा पश्चात् गोमूत्र पिलायें। मैंने पेटके रोगियोंको ऑपरेशनके बाद भी गोमूत्र पिलाया है। लम्बे समयतक गोमूत्रका सेवन पेटकी समस्त बीमारियोंको ठीक कर देता है।

जुकाम, सर्दी, साँस फूलना, दमा—तवेको खूब गर्म करके, फिटकरी तोड़कर गर्म तवेपर डालकर उसका जलीय अंश सुखा दें। चाकूसे खुरचकर सफेद पाउडर शीशीमें सुरक्षित रखें। इसे आयुर्वेदमें टंकण (बालसुधा) कहते हैं। आधा कप गोमूत्रमें चौथाई चम्मच बालसुधा मिलाकर खाली पेट पीनेसे पुराना जुकाम अवश्य ठीक होगा। दमाके पुराने रोगियोंको गोमूत्रमें अडूसा (वासाचूर्ण) ५ ग्राम मिलाकर पिलायें। दमाके रोगमें चावल, आलू, चीनी, उड़दकी दाल, दही, मांसाहार तथा धूम्रपान न करें। शक्ति प्रदान करनेके लिये सीतोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश, वासावलेह मधु मिलाकर दें, परंतु गोमूत्र भी दोनों समय पिलायें। डिप्थीरिया (डब्बा रोग)-में दो ग्राम बालसुधा मिलाकर गोमूत्र एक-एक घंटेपर पिलायें। डीप्थीरियाका इंजेक्शन तभी लगायें, जब साँस तथा भोजनकी नली सिकुड़ गयी हो। गोमूत्रमें सरसोंके तेलकी दो बूँद मिलाकर नाकमें टपकावें। बंद नाक खुल जायगी। रोगी आरामसे साँस लेने लगेगा। गोमूत्रमें गोघृत तथा शुद्ध कर्पूर मिलाकर कपड़ा तर करके सीनेपर रखें। कफ पिघलकर निकल जायगा।

वातरोग—घुटने, कुहनियों, पैरकी पिण्डलियोंमें साइटिका रोग होनेपर, मांसपेशियोंमें दर्द, सूजन होनेपर, गोमूत्रसे बढ़कर दूसरी कोई औषधि नहीं है। संधिवात, हड़फूटन, रूमेटिक फीवर तथा आर्थराइटिसमें सभी दवाइयाँ फेल हो जाती हैं। अस्सी प्रकारके वातरोगोंकी एकमात्र औषधि गोमूत्र है। आधा कप गोमूत्रमें शुद्ध शिलाजीत २ ग्राम, रास्नादि क्वाथ, रास्नादि चूर्ण, सोंठ-चूर्ण, शुद्ध गुग्गुल अथवा महायोगराज गुग्गुल दो गोली मिलाकर पिलायें। कब्ज होनेपर सप्ताहमें एक दिन गोमूत्रमें शुद्ध एरंडतेल (कैस्टर ऑयल) मिलाकर पिलायें। हाथ-पैरकी अँगुलियोंमें टेढ़ापन आ जाय तो स्वर्णयुक्त महायोगराज गुग्गुल तथा स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटीके साथ गोमूत्रका सेवन करायें। चुम्बक-चिकित्सा इस रोगमें लाभकारी है। महानारायणतेल सरसोंके तेलमें अफीम गलाकर मालिश करें। धतूर, आक अथवा एरंडके पत्तोंमें तेल चुपड़कर रातमें पट्टी बाँध दें—आराम मिलेगा।

डायबिटीज—शक्कर (चीनी)-की बीमारी अनेक बार चाय तथा कॉफी पीने एवं पेनक्रियाजकी कमजोरीसे होती है। बीमारीका पता लगते ही चावल, आलू, चीनी, गुड़, मिठाई, मांसाहार बंद कर दें। सुबह खाली पेट स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटी दो गोली चबाकर गरम जल तथा एक घंटेके बाद ताजा गोमूत्र पिलायें। संध्या-कालका नाश्ता और चाय बंद करके शिलाजीत कैप्सूल खिलाकर गोमूत्र पिलायें। मेथी-चूर्ण एक चम्मच जलके साथ दें। जामुनके हरे पत्ते पाँच, नीमके पत्ते दस तथा बेलपत्र पाँच, आमके पीले या हरे पत्ते पाँच पीसकर रस निकालें, इसी रसके साथ शिलाजीत कैप्सूलका प्रयोग करें। ब्लड-शुगर अधिक बढ़ा हुआ हो तो स्वर्ण-वसंत-कुसुमाकर दोनों समय गोमूत्रके साथ दें। डायबिटीजके कारण गुर्दे, लीवर तथा हार्ट कमजोर हो जाते हैं जिन्हें केवल गोमूत्र और शिलाजीत ही ठीक

कर सकेगा।

क़ब्ज़—टट्टी साफ नहीं होना सभी रोगोंको बढ़ाता है। गोमूत्र पेशाब तथा टट्टीका कब्ज दोनोंका खुलासा करता है। टट्टीकी क़ब्ज़में गोमूत्र दोनों समय पिलायें। शामको त्रिफलाचूर्ण गर्म पानीसे दें फिर गोमूत्र पिलायें। बच्चोंको टट्टी नहीं होनेपर गोमूत्रमें मधु मिलाकर पिलायें। गोमूत्रमें एरंडका तेल अथवा बादाम-रोगन दो चम्मच मिलाकर सेवन करानेसे दस्त साफ होगा। गायके गरम दूधमें एक चम्मच गायका शुद्ध घृत मिलाकर पिलानेसे गर्भवती महिलाओंको क़ब्ज़ नहीं रहेगा।

यकृत्-रोग—मलेरियाके कारण तिल्ली (स्प्लीन) बढ़ जाती है। शराब पीने तथा मांस खानेसे यकृत् निष्क्रिय होकर जांडिस—पीलिया और अन्तमें कामला रोग हो जाता है। खूनमें हीमोग्लोबीनकी कमीसे पेशाब पीला हो जाता है तथा आँखें पीली हो जाती हैं। इस बीमारीमें खाली पेट गोमूत्र पिलायें। पुनर्नवा (साँट—रक्त पुनर्नवा)-को पीसकर पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम ताजा गोमूत्र मिलाकर पिलायें। पुनर्नवाका चूर्ण पाँच ग्राम रस नहीं मिलनेपर मिलायें। भोजनके बाद पुनर्नवारिष्ट पिलायें। अधिक दुर्बलतामें पुनर्नवा मंडूर पाँच ग्राम मधुमें मिलाकर चटायें। एक घंटाके पश्चात् गोमूत्र पिलायें। गोआर पाठा (घृतकुमारी)-के पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे पाचनतन्त्रके सभी अवयव रोगमुक्त हो जाते हैं। दो ग्राम अजवायनका चूर्ण अथवा जायफल घिसकर गोमूत्रमें मिलाकर पिलानेसे पेटका दर्द, मरोड़, आँव, भूखकी कमी निश्चित दूर हो जायगी।

बवासीर—खूनी तथा बादी दोनों बवासीर (पाइल्स) गोमूत्र पीनेसे ठीक होते हैं। शामको खाली पेट गोमूत्रमें दो ग्राम कलमी शोरा घोलकर पिलायें। क़ब्ज़की स्थितिमें त्रिफला-चूर्ण मिलाकर गोमूत्र पिलायें। जलोदरमें दो ग्राम यवक्षार मिलाकर गोमूत्र पान करना चाहिये। अन्न खाना बंद कर दें। फलों तथा सब्जियोंका रस पिलायें। दूध भी दे सकते हैं।

खाज-खुजली—खुजली, एग्जिमा, सफेद दाग, कुष्ठ-रोगमें दोनों समय गोमूत्र पिलायें। गिलोय (अमृता, गुडूची)-के रसमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे शीघ्र लाभ होता है। चावल मोगराका तेल गोमूत्रमें मिलाकर चमड़ीपर मालिश करें।

हृदयरोग—गोमूत्र पीनेसे खूनमें थक्के नहीं जमते। हाई एवं लो ब्लडप्रेशरमें गोमूत्रका लैक्टोज असर करता है। हृदयरोगमें गोमूत्र अच्छा टॉनिक है। यह सिराओं और धमनियोंमें कोलस्ट्रॉलको जमने नहीं देता। दस ग्राम अर्जुन-छालका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पिलायें। अर्जुन-छालकी चाय बनाकर पिलानेसे भी बहुत लाभ होता है। मिठासके लिये चीनीके स्थानपर किशमिश-खजूर, सेबका रस व्यवहारमें लायें।

हाथी-पाँव (फीलपाँव)—सौ ग्राम गोमूत्रमें हल्दीचूर्ण पाँच ग्राम, मधु अथवा पुराना गुड़ मिलाकर पिलायें। फाइलेरियामें अण्डकोष, हाथकी नसोंमें सूजन आ जाती है। सुबह-शाम दोनों समय नित्यानन्दरस दो-दो गोली गरम पानीसे खिलाकर आधा घंटाके बाद गोमूत्र पिलायें। क़ब्ज़में एरंडका तेल मिलाकर गोमूत्र पिलायें। चाय, कॉफी, चॉकलेट, मांसाहार तथा धूम्रपान बंद कर दें।

गुर्दा-रोग—किडनी मानवके रक्तसे अशुद्धियोंको छानकर मूत्रद्वारा शरीरका विष निकालती है। किडनी फेल होनेपर इसका प्रत्यारोपण होता है। डायलिसिस एक महँगा इलाज है। जिनका गुर्दा कमजोर हो, रातमें बार-बार पेशाब लगे, प्रोस्टेट-ग्रन्थि बढ़ गयी हो, उन्हें नियमित गोमूत्र पीना चाहिये।

गोमूत्रसे बढ़कर कोई औषधि नहीं है। बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थातक बिना किसी रोगके गोमूत्र पीना स्वस्थ रहनेके लिये सर्वोत्तम है। गोमूत्र पीनेके पश्चात् तुरंत जल पीनेसे गला मीठा हो जाता है।

—प्रे० श्रीसुधाकरजी ठाकुर
बस स्टैंड, बी०एम०वाई भिलाई
पिन-४९००२५ (म०प्र०)

धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे एम्०ए०, पी-एच्०डी०, वैद्य विशारद)

यदि आज हम भारतीय समाजकी ओर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट-रूपसे दिखायी देती है कि हमारा समाज पाश्चात्त्य संस्कृतिसे इतना प्रभावित हो गया है—इतना ग्रस्त हो गया है कि वह अपनी-स्वयंकी पहचान ही भूल गया है। वह अपने धार्मिक व्रतोंको हेय दृष्टिसे निहारता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगोंको इन्हें आचरणमें लानेकी सलाह देनेका प्रयास करता है तो वे उलटा प्रश्न करते हैं, कहते हैं कि 'धार्मिक व्रतोंके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार या सिद्धान्त है क्या? इनके पालनसे कोई लाभ है क्या?' ऐसे न जाने कितने प्रश्नोंकी बौछार करके वे स्वयं तो भ्रमित रहते ही हैं, दुर्बल आस्थावालोंको डिगा भी देते हैं।

आजकलकी छोटी-छोटी बस्तियों, कस्बों, गाँवों, शहरों और बड़े-बड़े नगरोंमें निवास करनेवालोंकी ओर निगाह डालें तो परिणाम अपने-आप सामने आता है। जरा-सी छींक आने, थोड़ा-सा ज्वर होने तथा सर्दी-खाँसीसे पीडित होनेपर लोग डॉक्टरकी शरणमें जाते हैं। तुरंत मूत्र तथा रक्त आदिकी जाँच करानेकी सलाह मिलती है और रिपोर्ट देखकर चिकित्सक इलाज करते हैं। बड़े-बड़े शहरों-नगरोंमें नर्सिंग होम और विशालकाय हॉस्पिटलोंकी शृंखलाएँ फैल रही हैं। आजके युगमें कैंसर, ब्लडप्रेशर, मधुमेह, गठिया आदि रोगोंसे अधिकांश व्यक्ति पीडित हैं। कुछ रोग तो ऐसे हैं जो धनके साथ-साथ शरीरका भी नाश कर डालते हैं।

सौ-दो-सौ वर्षोंके इतिहासका ही सिंहावलोकन करें तो आजकी तुलनामें तत्कालीन भारतीय समाज अधिक स्वस्थ था, नीरोग था। आजके जैसे भयंकर रोग कोसों दूर थे। सामान्य रोगोंका आक्रमण नहीं होता था ऐसी बात नहीं, परंतु वे लोग धर्मशास्त्रके अनुसार आचरण करके स्वस्थ तथा नीरोग रहनेका प्रयास अवश्य करते थे और उन्हें सफलता भी मिलती थी।

हमारे ऋषि-मुनियोंने 'मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे', इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदके आधारपर 'धार्मिक व्रतोंका अनुपालन' करनेका उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतोंके पालनसे अनेक सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवनका अनुभव करते-करते मानसिक तनावसे छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्तिका सहज-सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है।

भारतवर्षमें नव-वर्षारम्भसे अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरपर्यन्त सभी तिथियोंमें व्रतोंका विधान है। मासव्रत, वारव्रत, तिथिव्रत, नक्षत्रव्रत आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। सभी व्रत करने सम्भव तो नहीं हैं तथापि प्रत्येक मासमें कम-से-कम एक या दो व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् नववर्षारम्भको मुख-मार्जन स्नानादिसे निवृत्त होनेके उपरान्त सर्वप्रथम कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेका विधान है। प्रतिदिन प्रातःकाल कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर अनेक चर्म-रोगोंसे मुक्ति मिलती है।

इसी दिनसे श्रीरामनवमीतक चैत्र नवरात्र-उत्सवका शुभारम्भ होता है। अनेक स्त्री-पुरुष इसमें उपवास रखकर भगवान् श्रीराम और भवानी माताकी उपासना करके दीर्घ शान्ति और सुख प्राप्त करनेकी कामना करते हैं।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें 'अक्षय-तृतीया' एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त है। इस पवित्र तिथिको उपवासपूर्वक जलसे भरा हुआ मृत्तिका-कुम्भ, फल-पंखा तथा दक्षिणासहित दान करनेका विधान है। इसी तिथिसे प्रतिदिन मिट्टीके घड़ेमें भरा हुआ जल पीना प्रारम्भ करना आरोग्यदायी माना जाता है। मिट्टीके सम्पर्कसे जल शुद्ध होता है। पञ्चतत्त्वोंमेंसे ये दो तत्त्व—जल और पृथ्वी शरीरके लिये पोषक बनते हैं। सर्दीके दिनोंमें बना हुआ तथा अग्निसम्पर्कसे पका हुआ मिट्टीका घड़ा अधिक उपयोगी माना गया है। फ्रिजमें रखे हुए जलकी अपेक्षा मटकेका पानी अधिक लाभकारी है।

श्रीपुरुषसूक्तमें एक ऋचा है—'**चन्द्रमा मनसो जातः०**' अर्थात् परमब्रह्म परमात्माके मनसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है। चन्द्रमा शीतल है। कहते हैं कि चन्द्र-किरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। मानवकी सम्पूर्ण क्रिया मनसे ही होती है। चन्द्रमा और भगवान् श्रीगणेशका अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिसे मनकी शान्ति-हेतु और बुद्धि-प्राप्ति-हेतु श्रीगणेशचतुर्थीका उपवास फलदायी होता है। प्रत्येक मासमें दो चतुर्थी आती हैं। अधिकांश लोग कृष्णपक्षकी चतुर्थीका व्रत करते हैं। दिनभर उपवास रखकर शामको भगवान् श्रीगणेशका पूजन करके चन्द्रोदयके पश्चात् चन्द्रका दर्शन कर भोजन करना उपयुक्त है। भगवान् श्रीगणेशको तिल-गुड़का नैवेद्य या मोदक अधिक प्रिय है। चन्द्रोदयके पश्चात् भोजन करनेसे अन्नमें उत्पन्न चन्द्रमाका अमृत एवं उसकी शीतलता मनको शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतोंमें एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदिका बड़ा महत्त्व है। वर्षभरमें चौबीस एकादशियाँ आती हैं। इनमें विष्णुशयनी, प्रबोधिनी एकादशी तथा महाशिवरात्रि-व्रतका अपने-आपमें बड़ा महत्त्व है।

यद्यपि सालभर धार्मिक व्रतोंका अपार भण्डार है तथापि चातुर्मास-व्रतोंके पालनका आरोग्यप्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा एवं अद्वितीय महत्त्व माना गया है। यदि हम चातुर्मासमें धार्मिक व्रतोंका सही-सही पालन करें तो आरोग्यप्राप्तिके साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त कर सकेंगे।

चातुर्मासमें वात-पित्त-प्रकोपक साग-सब्जियोंका त्याग करना श्रेयस्कर होता है। साथ ही एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

एक कहावत है—'**वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः।**' अर्थात् चिकित्सकोंके लिये शरद्-ऋतु लाभकारी है। यह एक माताकी भाँति वैद्य लोगोंकी परवरिश करती है तो वसन्त-ऋतु एक पिताकी तरह उनका पालन-पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव मानवके स्वास्थ्यपर डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन दो ऋतुओंके आगमनके साथ-साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगोंसे पीडित होते हैं। इन रोगोंसे बचनेका घरेलू सामान्य उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन (आचरण)-कर अपने खान-पानपर ध्यान देते हुए ईश्वरकी आराधना करना है, इससे शरीर नीरोग तो रहता ही है, आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है।

वर्षा-ऋतुमें अनेक सब्जियाँ सड़ती हैं, उनमें कीड़े प्रवेश करते हैं, तालाब आदिका जल दूषित हो जाता है। मच्छर, विभिन्न प्रकारके कीड़े-कीट वर्षा-ऋतु और शरद्-ऋतुमें पैदा होते हैं। इन कीड़ों-मकोड़ोंसे रोग-मुक्तिके लिये धार्मिक व्रतोंका विशेषरूपसे आयोजन होता है।

आरोग्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें कम-से-कम एक दिन उपवास करके उस दिनसे सम्बन्धित देवताकी आराधना-पूजा-अर्चना करना पुण्यदायक है। सोमवार भगवान् शङ्करके लिये, गुरुवार भगवान् दत्तात्रेय-हेतु, शुक्रवार या मङ्गलवार माता भवानीके हेतु, शनिवार श्रीहनुमान् एवं शनिदेवकी आराधना-हेतु व्रत किया जाता है। सोमवारको शामके समय भगवान् शङ्करकी पूजा-अर्चना करके भोजन करना उपयोगी होता है। अन्य दिन—रविवार और बुधवारको मध्याह्नके पश्चात् एक समय भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना आदि सात्त्विक, सुपाच्य और हल्के पदार्थोंका सेवन करना अत्यन्त लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्ण रूपसे निराहार एवं निर्जल व्रत करना चाहिये। अधिकांश व्रतों-त्योहारोंमें दान करनेकी परम्परा है। दानका बड़ा महत्त्व है।

दान देना व्यक्तिके मानसिक विकासकी दृष्टिसे और सामाजिक कल्याणकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। चातुर्मासके उपवास और नियम-धर्म इस दृष्टिसे भी उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम-धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंका स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी विकास होगा।

अतः धार्मिक व्रतोंका उचित पालन (आचरण) करनेसे शारीरिक शुद्धि होकर आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इन व्रतोंके माध्यमसे हम ईश्वरकी भी प्राप्ति कर सकते हैं।